(श्रीहरिर्जयति)

(भूमिका)

परम आस्तिक सनातन धर्मी सत्पुरुषों का यह मत है कि जिस पूर्ण-ब्रह्म सर्व शक्तिमान् जगदाधार परमात्मा को वेदों ने निरंजन निराकार ज्योतिः स्वरूप गुणातीत अलख अगोचर अज अनादि शब्दों से प्रतिपादन किया है वोही सर्वेश्वर महेश्वर जब भूमिपर पापी दुराचारी धर्म विरोधी असुरों का भार बढ़ जाता है धर्म और धर्मात्मा पुरुषों की रक्षा के लिये नाना रूपों को धारण करके प्रगट होजाता है और पापियों को दंड देकर धर्म की रक्षा करलेता है। मच्छ कच्छ वराह नृसिंह वामन आदि रूपों में उसी ने प्रकट होकर दुष्टों को दंड देकर धर्म की रक्षा की है। और जितने सन्त महात्मा हर मज़हब में हुए हैं सब उसी परमात्मा का अंश हैं हज़रत ईसा मूसा मुहम्मद ज़र्दश्त बुद्ध से आदि लेकर समय २ पर प्रगट होकर उस समय के उचित धर्म का उपदेश करते रहे हैं और कबीरजी नानिगजी दादूजी चरणदासजी स्वामी नारायणजी आदि महात्मा लोगों ने समयोचित उपदेशों से लाखों किरोडों जीवों का उद्धार किया है इसी प्रकार श्री-शंकराचार्य्य श्रीरामानुज आचार्य श्रीवल्लभाचार्य श्रीमाधवाचार्य श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु आचार्य्य और जितने धर्म प्रवर्तक उपदेष्टा हुये हैं सब परमात्मा के अंश कला रूप मान्य हैं ॥

तथापि सब अवतारों में मर्यादापुरुषोत्तम दशरथ नंदन रघुकुलचंदन जगवन्दन श्रीरामचन्द्रमहाराज और लीलापुरुषोत्तम श्रीवसुदेव नन्दन यदुकुल भूषण जित दूषण लोकमान्य श्रीकृष्णचन्द्र महाराज यह दो धन्य तम अग्रगण्य हुए जिनके सत् चरित्र और सद्गुणों के श्रवण और कीर्तन से अस-

रूप प्राण धारी संसारी मुक्ति के अधिकारी होकर भवसागर से पार उतर गये और अद्यावधि उनके स्मरण मात्र से त्रिविध ताप नष्ट होकर कल्याण की प्राप्ति होती है ॥

उनमें भी करुणागार दयाधार भक्तवत्सल श्रीवसुदेव कुमार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् ने संसारियों पर अपूर्व कृपा दृष्टि करके भगवत् गीता रूपी नौका ऐसी रची है जिस के द्वारा अपार संसार सागर से तरजाना अत्यन्त ही सुगम होगया है । यह गीता रूपी अमृत भवरोग की प्रबल औषधि है वेदों का शिरो भाग जो उपनिषद् हैं उनको गऊ रूप समझो उन गायों के दोहने वाले श्रीगोपालजी, और बछड़ा अर्जुन है विचारशील बुद्धिमान पुरुष इस के पीने वाले और अमृत रूपी दूध यह गीता का उपदेश है

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

एक गीता के भली प्रकार पढ़लेने और समझने वाले को और वेद शास्त्रों के पठन में परिश्रम उठाने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि सब का सार उपदेश इस में मौजूद है और विशेष यह है कि स्वयं श्रीहरिभगवान् के मुख से निकली हुई है ॥

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः
यास्वयंपद्मनाभस्यमुखपद्माद्विनिःसृता ॥

येही कारण है कि इस गीता की सैकड़ों टीका होचुकी हैं संस्कृत देव वानी में इस पर श्री शंकराचार्य स्वामी का भाष्य और श्रीस्वामी रामानुज आचार्य का भाष्य और श्रीधर स्वामी, मधुसूदन स्वामी आनन्दगिरिस्वामी

केशवकाश्मीरी आदिकी अनेक टीकाएँ होरही हैं। फ़ारसी में फ़ैज़ीने उर्दू में अनेक विद्वानों ने अंगरेजी में भी बहुत से सभ्य पुरुषों ने इस पर टीकायें लिखी हैं और नागरी भाषा में तो विविध टीकायें महज्जनों ने प्रकाशित करी हैं जिस से साबित होता है कि गीता उपदेश हर एक देश और मज़हब और हरएक भाषा के विद्वानों को अत्यन्त प्यारा है और इस को बहुत ही उपयुक्त (फ़ायदेमंद) समझकर सर्व साधारण मनुष्यों के उपकारके अर्थ इस की टीका लिखने में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति विद्वानों की हुई और होरही है ॥

परन्तु एक बात की बहुत ही न्यूनता रही कि इस का नाम गीता (गाईहुई वस्तु है) गीता प्रसिद्ध गाने का नाम है तथापि किसी हरिकीर्तन समाज में गीता गाई जाती हुई देखने और सुने में नहीं आई। और आप जान्ते हैं कि जैसा असर गाने के द्वारा होता है वैसा; साधारण पाठ से नहीं होसक्ता। तुलसी कृत रामायण से जो सहस्त्रों का उपकार हो रहा है इसका कारण मुख्य यही है कि वोह गाई जाती है ॥

थियटरों में जो गाने होते हैं उन का कितना असर होता है। एक टूटी फूटी बेतुकी कविता भी गाने से ऐसी प्यारी मालूम होने लगती है कि लोग फ़ौरन् आनंद के आंसू बहाने लगते हैं। और बढिया से बढिया कविताई गाये विना फीकी मालूम होती है ॥

राग रागिनी में वो असर है कि मनुष्य तो क्या सुरीली आवाज़ सुनकर मृग उछल कूद को भूल कर एक जगह बेदम जैसा खडा रह जाता है चाहे शिकारी उसका प्राणही क्यों न लेलेवै। सर्प सुरीली आवाज़ पर मोहित होकर फण हिला कर नाचने लगता है

परन्तु बडे सन्ताप का अवसर है किगीता जैसी चीज न गाई जावै ॥

यह बात पहले इसी जयनगर के निवासी एक विद्वान् पंडित गोपीनाथजी को सूझी थी उन्होंने परिश्रम करके उपदेशामृत षष्ठी नाम करके पुस्तक

छपाई भी परन्तु उस को प्रकाशित हुए बहुत काल बीत गया तौभी कहीं उसका प्रचार गान समाज मैं नही देखाजाता कारण यह मालूम होता है कि वोह गीता की उल्था पुराने तर्ज के गाने मैं है और आज कल लोग जिन नई २ चालों और तर्जों को पसंद कर्ते हैं गज़ल रेखता ठुमरी दादरा थियेटर की चाल वगैरा २ उन मैं न होने के कारण न कोई गवैया उसे गाता न कोई उत्साह उन के सुन्ने का प्रघट करता है ॥

इस दासानुदास के हृदय मैं अन्तर्यामी स्वामी परधामी गान रसिक वर नट नागर छविसागर करुणा कर श्रीवासुदेव भगवान ने एक बार प्रेरणा की उस पर दासकी पवृत्ति नही हुई तब दूसरी बार बडे जोर से आज्ञा हुई तब तौ उसका पालन अत्यावश्यक होगया परन्तु प्रार्थना की गई कि इस निर्बुद्धि तुछ जन से ऐसा महत्व कार्य क्यों कर बन पडैगा इसपर आपने हिम्मत बंधाकर स्वयंही इस कार्य को निर्विघ्नता से सम्पूर्ण करादिया इस मै इस शरीर का कुछभी कर्तव नही है जिस का उपदेश है उसी की प्रेरणा और उसी की कृति है इस मैं कोई भी संदेह का अवसर नही है एक यह बात भी आवश्यक निवेदनीय है कि इस पुस्तकका नाम गीता सार संगीत है । यद्यापि उपदेश का कोई अंश छोडा नही गया है तथापि कुछ संक्षेप पर दृष्टी रक्खी गई है इस कारण से कि हर एक अध्याय नई नई तर्ज के गाने मैं है और एक पद के बहुत से अन्तरे गाने मै गायक और श्रोता दोनों उकता जाते हैं इसहेतु से सार उपदेश का सब ग्रहण कर लिया गया है । प्रथम अध्याय का संक्षेप अधिक किया गया है इस लिये कि विस्तार उस का अत्यावश्यक नही समझा गया । श्लोक का नंबर अन्तरे के आरंभ मैं रख दिया गया है उस से भावार्थ का संमेलन किया जा सकता है ॥

अन्त मैं यह भी धन्यवाद पूर्वक निवेदन किया जाता है कि श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के परम वैष्णव पूर्ण वैराग्य युत श्रीयुगल सरकार के अतीव कृपा

पात्र रसिक वर श्रीमद्भागवत के रहस्य जान्ने वाले वक्ता वर्षाना विलास गढ़ निवासी महात्मा परमहंस सन्त श्रीमन्त हंसदासजी स्वामी ने इस कार्य मैं दास को बहुत ही सहायता प्रदान की है और जो कुछ त्रुटी रही थी उन्हों ने अवलोकन करके पूरी करदी इस का अन्तः करण से धन्यवाद अर्पण करता हूं ॥

आशा है कि आप महानुभाव इस टूटी फूटी बालभाषा पर दृष्टि न देकर केवल आशय से लाभ उठावैं और इस दास की मूर्खता और धृष्टता को क्षमा करें गे ॥

श्रीमथुरेश चरणशरण
हरिदासानुदास
मथुराप्रसाद

श्रीहरिर्जयति ॥

श्रीकृष्ण गीता सार संगीत

॥ प्रथम अध्याय ॥

इस अध्याय को रामायण के छंद की तर्ज में गाना चाहिये

सं. श्लोक } गीता } श्रीरामचंद्र कृपालु भजमन हरण भव भय दारुणं ॥

श्रीगीता सार विचार कर नर सहज भव सागर तरैं ॥
जतन कर हरि वचन पालन किये दुख संकट टरैं ॥ १ ॥

१—संजय से नृप धृतराष्ट्र पूछत कहा दोउन मिल कियो ॥
पांडवन अरु मम सुतन, तब संजै यह उत्तर दियो ॥ २ ॥

२—कुरुछेत्र में कुरु पांडु सुतन के दोहु दल रण हित छये ॥
देख दुर्योधन सबन कौं द्रोणाचारज पै गये ॥ ३ ॥

३—देखिये महाराज अपने शिष्य की करणी सही ॥
आप ही से युद्ध कौं यह व्यूह रचना बन रही ॥ ४ ॥

१०—भीष्म से रक्षित हमारी सेना भासत पोच है ॥
भीम रक्षक पांडु सेना को है यातैं असोच है ॥ ५ ॥

११—आप सब भीषम की मिल के रण मैं रखवारी करौ ॥
अपनी २ ठौर थिर संग्राम इच्छा चित धरौ ॥ ६ ॥

१२—फिर तौ दोऊ सेना मैं बाजे विविध बाजत भये ॥
व
१३ भेरी नगाडे गोमुखे अरु शंख धुनि रव नभ छये ॥ ७ ॥
रथ विराजे कृष्ण, अर्जुन, रंगभूमि मैं सज गये ॥
गुरु जनादिक निरख अर्जुन मोहबस व्याकुल भये ॥ ८ ॥
३२
तक—शस्त्र डार के दुखित अर्जुन कहत हरिसे विचार के ॥
राज्य सुख नहीं चहूं भगवन् गुरु पितादिक मार के ॥ ९ ॥
४६
तक—कुल के नाश में दोष भारी जानूं मैं किस विध करूं ॥
यासे तौ उत्तम यही है उनको मारयो मैं मरूं ॥१०॥

॥ अथ प्रथम अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

राजा धृतराष्ट्र के प्रश्न करने पर संजय कहता है कि जिस समय कुरुक्षेत्र के मैदान मैं दुर्योधन आदिक कौरव और युधिष्ठिर आदिक पांडव इन दोनों की सेना युद्ध के लिये सजाई गई तब दुर्योधन राजा ने अपने गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा कि महाराज ! देखिये आप के शिष्य द्रुपद राजा के पुत्र ने पांडवों की सेना मैं कैसी व्यूह रचना करी है आप से ही लडने की तैयारी की गई है और हमारी सेना के पति भीष्म पिताजी वृद्ध हैं इस कारण से हमारी सेना पोच दिखाई देती है और पांडवों की सेना का अधिपति भीमसेन है इस हेतु से वो प्रबल मालूम होती है, इस कारण से आप सब योधा मिलकर भीष्म पिताजी की ही रक्षाकरो, इतने मैं दोनों सेनाओं के वीर पुरुषों ने भेरी, शंख, वगैरा बाजे बजाये, तब अर्जुन जिस रथ में था उस के सारथी श्रीकृष्ण भगवान् थे यह दोनों रणभूमि के मध्य में रथ मैं बैठे हुए जा खडे हुए, अर्जुन ने जब अपने गुरु और दादा और साले, ससुरे और कुटुम्बियों को मुकाबले मैं देखा तौ उस को मोह

पैदा हुआ कहने लगा कि इनको मारकर मैं राज्य सुख भोगना नहीं चाहता कुल के नाश करने का बडा भारी पाप है वो मैं कैसे करूं इस से तो येही उत्तम बात है कि कौरव लोग मुझ को मारलेवैं इतना कहकर अर्जुन ने शस्त्र हाथ से डाल दिये और व्याकुल होगया ॥

इति अर्जुन विषाद योग नाम प्रथम अध्यायः ॥ १ ॥

॥ दूसरा अध्याय ॥

(ज़रा छब दिखाके वो जादुगर है नज़र में मेरी समागया इस तर्ज़ मैं गाना)

राग सोरठ में

१—निरख अर्जुन की विकलता बोले श्रीमुख से हरी ॥
कौन कारण रण समय तुम दिया अर्जुन उर धरी ॥ १ ॥
२—स्वर्ग न मिलै कुजस होय सुजन की यह करणी नही ॥
तजदे कायरपणो उठ ये अजोग सरणी क्यों गही ॥ २ ॥
४—कहत अर्जुन पूज्य गुरू पितु आदिसौं कैसे लडौं ॥
भीख मांगौं प्राण त्यागौं चाहे संकट मैं पडौं ॥ ३ ॥
६—सोउ निश्चय नाहि मैं जीतों कि वा वे जीति हैं ॥
मारि के इनको नही जीवे मैं मेरी प्रीति है ॥ ४ ॥
७—या कृपणता दोष सैं मैं मूढ मति पूंछत अहो ॥
शिष्य हूं तुम्हरी शरण कल्याण हो मम सो कहौं ॥ ५ ॥

९-नहिं लडूं गोविन्द ऐसे कहके अर्जुन चुप भयो ॥
१० दोऊ सेना मध्य हँस तब हरि वचन इस विधि कह्यो ॥ ६ ॥
११-सोच करत असोच्य वस्तुको ताहि चतुर न मानिये ॥
जीव नित्य त्रिकाल में तेहि सोच उर नहि आनिये ॥ ७ ॥
१२-पहले मैं कहा नारह्यो तुम और ये नृप ना भये ॥
फिर क्या हम तुम सब नहोंगे कछुक दिन पीछेगये ॥ ८ ॥
१३-बाल तरुण सुवृद्ध जिम यह जीव देह में लख परै ॥
तिम अनेक शरीर धारत आप नहि जन्मै मरै ॥ ९ ॥
१४-दुःख सुख शीतोष्ण को कर सहन थिरता लीजिये ॥
देह इन्द्रिय धर्म जान के सोच कबहु न कीजिये ॥१०॥
२१-नित्य अविनाशी अजन्मा जानै जो नर जीव कौ ॥
कौन मारन हार ठैरै काहि मारै अस कहौ ॥११॥
२२-जीर्ण वस्त्र उतार कै जिम वसन नूतन तन धरै ॥
त्यों एक देह कौ त्याग नाना देह धर लीला करै ॥१२॥
२६-नित्य जन्म मरणहु जीव को यदि तू अपने चित धरै ॥
तौहु तू है महाबाहू सोच काहे को करै ॥१३॥
२७-देह जनमत मरत पुनि जो मरै सो जन्मै अरे ॥
जतन निस्फल जान वाको कहा सोचत बावरे ॥१४॥
२८-आदि अन्त मैं जो न भासत मध्य मैं देखे परैं ॥
ऐसे भूतन की कहा तिथ सोच क्यों उर मैं धरै ॥१५॥

३२—क्षत्रियन को धर्म युद्ध है स्वर्ग द्वार खुलो रहै ॥
जय पराजय हानि लाभ मैं बुद्धि की समता गहैं १६॥
३९—सांख्य तत्व कह्यो ये आगे कर्म योग बिचारिये ॥
कर्म बन्धन तैं छुटन की रीति अब उर धारिये ॥१७॥
४० व ४१—धर्म थोडो सो भी यह बहु भयन तैं रक्षा करै ॥
बहुत शाखा मांहि उद्यम हीन की मति संचरै ॥१८॥
४२से ४४ तक—कर्म कांडहि मुख्य कहि स्वर्गादि फल जो नर चहै ॥
विषयि जन सो जन्म मरण के फंदही में फँस्यो रहै ॥१९॥
४६—कूप सरित समुद्र मैं जिम तृप्ति हेतु समान है ॥
निगम सिंधु मैं हित सलिल तिम भक्ति संयुत ज्ञानहै ॥२०॥
४७—कर्म कर फल आस परिहर यही तव अधिकार है ॥
त्यागिबो फल हेत करिबो उभय पक्ष असार है ॥२१॥
४८—कर्म करिये असंग ह्वै उर सुमति निश्चल धारिये ॥
सिद्ध और असिद्धि मैं समभाव योग विचारिये ॥२२॥
५३ तक—मोह जब मिट जाय तब वैराग उपजै सृष्टि मैं ॥
बुद्धि निश्चल तबहि जानिये योग यहि मम दृष्टि मैं ॥२३॥
५७ तक—त्याग मन की कामना सब नित्य जो सन्तुष्ट है ॥
अचल दुख सुख मांहि निर्भय शान्त सो मति पुष्ट है २४॥
५८—जैसे अंग सकोरै कछुवा तैसे इन्द्रिय बस रहैं ॥
ऐसे हरित संजमी कौ पूर्ण थिर बुद्धी कहैं ॥२५॥

५९–बिना भोजन किये देहिके विषय सगरे नसांयगे ॥
रस नजावैं वे तौ हरि के दरस ही तैं जांयगे ॥२६॥
६०–यत्न कर्ता हू के मन कौ इन्द्रियें हट सौं हरैं ॥
६१ मो शरण हो संजमी नित इन्द्रियन कौ बस करैं ॥२७॥
६२–विषय ध्याये संग उपजै संग काम प्रघट करै ॥
६३ वासे क्रोध जडत्व विस्मृति मति विनाश भये मरै ॥२८॥
६४–राग द्वेष विहीन निज वस इन्द्रियन तैं कामले ॥
६५–चित्त होय प्रसन्न वाहिको बुद्धि निश्चलता मिलै ॥२९॥
६६–बुद्धि नाहि असावधान कौ हिये बिच नहि भावना ॥
भाव हीन को शान्ति कैसी कबहु नहि सुख पावना ॥३०॥
६९–रात जो संसारि जन की, ज्ञानी ता में जागते ॥
जागैं प्राणी सोवैं तब ज्ञानी जगत से भागते ॥३१॥
७०–भरे पूरण सिन्धु मैं सब नदियें जाय समावहीं ॥
तैसे लीन हों कामना सब जाकि शान्ति सो पावहीं ॥३२॥
७१–त्याग सगरी कामना जो पुरुष बे परवा रहै ॥
दूर ममता अहंता से शान्ति सुख सोहीं लहै ॥३३॥
७२–सार दो अध्याय को यह प्रीत कर जो गावहीं ॥
कृपा श्रीमथुरेश हरि की ते अवश्यहि पावहीं ॥३४॥

॥ दूसरे अध्याय का सार वार्ता में ॥

अर्जुन को उस संग्राम भूमि में व्याकुल हुआ देखकर श्रीकृष्ण भगवान् फ़रमाते हैं कि इस अवसर पर तेरी ऐसी स्थिति किस कारण से हुई, सत्पुरुष ऐसा काम नहीं किया करते हैं जिस से स्वर्ग प्राप्ति भी न हो और संसार में अपकीर्ति होजावे इस लिये कायर पने को छोडकर उठ खड़ा हो ॥

तब अर्जुन कहने लगा कि महाराज ! मैं अपने गुरु और पितामह (दादे) आदिकों से क्योंकर लडूं वे तो पूजने योग्य हैं, उन से युद्ध करने की अपेक्षा से तो येही उत्तम है कि मैं भीख मांगकर जिन्दगी पूरी करूं या उन लोगों के हाथ से मरजाऊं, प्रथम तो यह निश्चय नहीं कि जीत किसकी होगी इस के उपरांत इन पूज्यों को मारकर अपना जीना मैं पसंद नहीं करता, अब मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करूं आपका शिष्य और आपकी शरण होकर पूछता हूं कि मुझे क्या करना उचित है, मैं तो लड़ना पसंद नहीं करता ऐसा कहकर अर्जुन चुपका होगया ॥ तब श्रीकृष्णचंद्र महाराज बोले कि तू पंडितों की सी बातें करता है परन्तु यह नहीं समझता कि जिस बात का सोच नहीं करना चाहिये उसका सोच करे वो चतुर नहीं है, पंडित मरने जीने का सोच नहीं किया करते हैं जीवात्मा तो नित्य है तीनों काल में नहीं मरता उसका सोच नहीं करना चाहिये ॥

हम, और तू और यह सब पहले भी थे अबभी हैं और आगे भी होंगे जैसे प्राणी बालकपन में कुछ और जवानी में और बुढापे में कुछ और ही दिखाई पड़ता है पर है तीनों काल में वोही एक, का एक उसी प्रकार बहुत से शरीरों को बदल ने पर भी जीवात्मा वोही एक बना रहता है, सुख, दुख, जो प्राप्त होते हैं वो देह और इन्द्रियों को होते हैं ऐसा समझ, जो ज्ञानी पुरुष है वो जानता है कि जीवात्मा अजन्मा और अविनाशी है तो मारने

वाला कौन और मरने वाला कौन इस की चिन्ता ही नहीं करता ॥

पुराने कपडे उतार कर नये पहनने की बराबर देहौं का बदलना है, यदि तू जीव कौ नित्य जन्म लेने और मरने वाला समझे तौ भी सोच की जगह नहीं है क्यों कि जन्मना मरना यह उसका स्वभाव ही ठैरा असल में देह का जन्म और मरण होता है उसके रोकने का कोई जतन नहीं तो सोच करना वृथा है, जो आदि और अंत मैं न हो मध्य मैं दिखाई दे उस की हस्ती ही क्या, क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना है जिस से स्वर्ग मिलता है हार जीत का कुछ खयाल क्षत्री नहीं किया करते, यहां तक तौ ज्ञान सांख्य रीत से कहा, अब कर्म योग कहते है, जो लोग कर्म कांड कौ ही मुख्य बतलाते और स्वर्ग आदि सुख भोग की इच्छा रखकर कर्म का फल स्वर्गादि सुख चाहकर कर्म करते कराते हैं वे विषयी कहलाते हैं और संसार चक्र से कभी नहीं छूटते हैं ॥

कर्म (यज्ञादिक और संध्यावन्दनादिक) जरूर करना चाहिये परंतु फल की इच्छा से नहीं करना चाहिये, कर्म योग इसी का नाम है कि असंग होकर (फल की इच्छा और अहंता बुद्धि न रखकर) कर्म करना और उसकी सिद्धी असिद्धी की चिन्ता न करना समभाव रखना, ऐसी अचल बुद्धि रखने से मोह का नास होकर वैराग होजाता है इसी का नाम योग है, जिस कौ कोई कामना नहीं है और दुख, सुख, कौ समान गिनता है उसी कौ निश्चल बुद्धिमान् कहते हैं, कछुवा पानी में जैसे अंग को सकोडलेता है उस तरह जो इन्द्रियों कौ बस में करले और परमात्मा मैं चित्त लगा वै वो ही स्थिर मति पुरुष है, भोजन त्याग देने से भी विषय हरजाते हैं परन्तु उन का रस संस्कार जबतक भगवान् से न मिलै नहीं मिटता है इस लिये मुझ (परमेश्वर) की शरण होना अवश्य है तब ही संजम बनैगा शब्द, स्पर्श आदि विषयों के संग से काम और काम से क्रोध, फिर क्रोध, से संमोह जडता उत्पन्न होकर उससे स्मृति का नाश, फिर उस से बुद्धि का ही नाश,

होजाता है बुद्धि के नाश से स्वयं नष्ट होजाता है ॥

राग और द्वेष को दूरकर इन्द्रियों को वश में रखने से शान्ति प्राप्त होती है जो इस में सावधान नहीं वो बुद्धि हीन है और बुद्धि बिना भाव नहीं और भाव बिना शान्ति कैसी, इस लिये सब कामनाओं को छोड जो वे परवा है उसी को शान्ति और सुख मिलता है ॥

इति सांख्य योग नाम द्वितीयो अध्यायः ॥ २ ॥

॥ तीसरा अध्याय ॥

(रागनी बरवा अथवा हुमाज में गाना)

जो गीताको सार न जानै जोगी ताहि कहो जिन कोई ॥
परम पुनीता होय नचीता जो जानै जगजीता सोई ॥१॥

१/२—अर्जुन पूछै बुद्धियोग जो कर्म से बडो आप मानौ तौ ॥
२ मिले वचन कह क्यों भरमाओ मोकौं कहौ श्रेष्ठ जो होई ॥२॥

३—दो निष्ठा या जग के माहीं ज्ञान कर्म दोउ जोग कहाई ॥
अतिहि सुखद कछु संशय नाहीं हरि बोले अस कहौं मैं तोई ॥३॥

४/५—अनारंभ अरु त्याग कर्म को यामैं लेश कछू न धर्म को ॥
५ विना कर्म विश्राम न दम को प्रकृती वश करते सब कोई ॥४॥

६—अंग से जो नर कर्म न करते मन सौं विषयन में चित धरते ॥
मिथ्याचारी लोक विचरते वृथा जान आयू तिन खोई ॥५॥

७—मन अरु इन्द्रिन को जो रोकै करै कर्म आसक्त न होकै ॥

ज्ञानके जलमन मलकौ धोके मनुज कहावै उत्तम सोई ॥६॥
१०—प्रजा हेतु, विधि यज्ञ, रचावैं सुर निज भाग पाय हरषावैं ॥
११ तिनतैं सकल वस्तु जनपावैं भाव परस्पर मैं सुखहोई ॥७॥
१२—विन देवन कौं अर्पण कीनें खाय पियें सो बुद्धि मलीने॥
१३ चोर कहावत सुकृत हीनें देह काज जो करत रसोई ॥८॥
१४—कर्म से यज्ञ यज्ञ से वृष्टिः वृष्टि से अन्न अन्न तें सृष्टिः ॥
१५ वेद से कर्म ब्रह्म तैं श्रुतिया भांत मूल जग ब्रह्म हि जोई ॥९॥
१७—आत्म रती जाके जग माहीं आतम सुख मैं तृप्त सदाही ॥
रहै प्रसन्न कृत्य कछु नाहीं वाकों नाहि प्रयोजन कोई ॥१०॥
२०से—जनकादिक भये कर्मसै पावन मैंहु करूं मरजाद रखावन ॥
२४तक-सत्पुरुषनको पंथदरसावन अहंभाव ममता मलधोई ॥११॥
२५—मूर्ख करै जिम कर्म लिप्त हो चतुर करैं सोही अलिप्त हो ॥
मूढ बंधैं फल काम सक्त हो ज्ञानी सबै सिखावत सोई ॥१२॥
२७—प्रकृतिसहित गुणकर्म करावैं गिननिज करणी मूढ बंधावैं ॥
२८, जो गुण कर्मतत्व लख पावैं निर्बन्धन ज्ञानी जनसोई ॥१३॥
३०—मोमैं अपर्ण कर कर्मन कौं ज्ञानयुक्त पालिये धर्मन कौं ॥
इच्छा ममता रहित नरनकौं सदा सर्वदा मंगल होई ॥१४॥
३३—निजप्रकृतिहि वश वर्तै ज्ञानी निग्रह काकरिहैं अभिमानी ॥
३४, राग द्वेष त्यागैं विज्ञानी जानत यह डाकू हैं दोई ॥१५॥
३५—अपनो धर्म विगुण हू नीको गुण वारो पर धर्म है फीको ॥

जोनिजधर्म हनै देहीकौं भलोजानिये निजहित वोई ॥१६॥
३६–अर्जुन पूंछै कौन को प्रेरो पाप करै यह पुरुष घनेरो ॥
इच्छा विना रहै मन घेरो सत्य बुझाय सुनाइहु मोई ॥१७॥
३७–काम क्रोध वैरी अतिभारी पाप रूप दोउ बडे अहारी ॥
ढकतज्ञान मतिदेतबिगारी मन इन्द्रियइनके वसहोई ॥१८॥
४२–देह तैं परे इन्द्रियां जानौ इन्द्रिन परे मनहि पहचानौ ॥
वातैं परे बुद्धि असमानौ तातैं परे आत्मा जोई ॥१९॥
४३–मन इन्द्रिनको संजम करके निज सुरूप मैं चित्तहि धरकै ॥
कामरिपू कौं मार पकर कै अंग ज्ञान के रंग भिजोई ॥२०॥
धन्यकृष्ण करुणाके सागर भक्तवसल गुण रूप उजागर ॥
श्रीमथुरेश हरी नट नागर कह्यो तत्व श्रुति सार बिलोई ॥

॥ तीसरी अध्याय का सार बार्ता मैं ॥

दूसरी अध्याय मैं श्रीभगवान नै अर्जुन कौ पहले सांख्य मत अर्थात ज्ञान उपदेश किया फिर कर्म करना भी वर्णन किया और बुद्धि योग (अध्यात्म ज्ञान) की श्रेष्ठता दिखाई ॥

अर्जुन पूंछै है कि महाराज ! आप कर्म योग से ज्ञान कौ श्रेष्ठ मानौ हौ तौ मुझे कर्म करने का उपदेश क्यों करते हौ इन दोनों मैं जो उत्तम होय सो आज्ञा कीजिय ॥

तब श्रीमहाराज आज्ञा करते हैं कि ज्ञानयोग और कर्मयोग यह दोनो निष्ठा संसार मैं चलीआवै हैं सो दोनो ही सुखदाई हैं, कर्म का आरंभ न करना और कर्म का त्याग देना यह दोनो ठीक नहीं हैं, ज़ाहिर मैं जो

लोग कर्म नहीं करते और अंदर से मन उनका विषयों में लगा रहता है वे लोग मिथ्या आचारवाले कहलाते हैं । प्रकृती के गुण जो सत, रज, तम, हैं यह अपने आप कर्म मैं मनुष्य को लगा देते हैं एक छिनभर भी मनुष्य कर्म से खाली नहीं रहसकता, इस लिये उत्तम पुरुष वोही है जो मन और इन्द्रियों को अपने काबू मैं रखकर वेद शास्त्र की आज्ञा अनुसार कर्म करता रहै परन्तु कर्मों मैं आसक्त न होवै ज्ञान निष्ठ रहे । ब्रह्माजी ने यज्ञ जो रचे हैं वो संसारियों और देवताओं दोनो ही के लाभ के वास्ते बनाये हैं, क्यों कि यज्ञ करके मनुष्य सारी संपत्ति को पाते हैं और देवता अपना भाग यज्ञों मे लेकर आनंद मनाते हैं, जो लोग देवताओं को अर्पण किये बगैर अन्न आदिक खाते हैं वे चोर और पापी हैं क्यों कि इन्द्र देवता वृष्टि न करें और सूर्य चंद्र आदि देवताओं की सहायता न हो तो अन्न पैदा ही नहो इस लिये यज्ञ करके देवताओं को भाग देना अति आवश्यक है, जो लोग भगवान् के अर्पण किये विना भोजन पाते और केवल अपने शरीर के लिये ही रसोई बनाते हैं वे दोष के भागी होते हैं, विचार करो कि ब्रह्म से वेद की श्रुतियें प्रघट हुई और वेदसे यज्ञ आदि कर्म होते हैं और यज्ञ से वृष्टि होकर अन्न पैदा होता है अन्न से वीर्य बनकर सृष्टि पैदा होती है तो सब का मूल हेतु ब्रह्म ही ठैरता है, और जो लोग आत्मा राम होकर मन को आत्मा मैं लगाये हुए सदा आत्म सुख मैं ही मगन रहते हैं उन को कोई कर्तव्य बाकी नहीं है क्यों कि मन और इन्द्रियां उनकी हमेशा रुकी हुई रहती हैं तो उन को कर्म करने की जरूरत नहीं, देखो जनक महाराज जैसे ज्ञानी भी कर्म करते थे और मैं भी स्वयं परमेश्वर होकर कर्म को करताही हूं इस प्रयोजन से कि कर्म की मरजाद का लोप न होजावै और सत्पुरुषों की देखा देखी और लोग भी कर्म करैं परन्तु ज्ञानी और अज्ञानी मैं इतना भेद है कि ज्ञानी निर्लिप्त होकर कर्म करते हैं और मूर्ख लोग कर्म मैं लिप्त और आसक्त होकर करते हैं फल की इच्छा और अहंता बुद्धि से कर्म करने वाले बंधन

को प्राप्त होते हैं प्रकृती के गुण सत्व, रज, तम, यह सब को प्रेरणा करके कर्म में लगा देते हैं अज्ञानी समझता है कि मैं कर रहा हूं इस से बंधन में आजाता है ज्ञानी जान्ता है कि प्रकृति के अनुसार देह से कर्म होरहे हैं अपने को न्यारा जान्ता है इस लिये वो बंधन में नहीं आता, सारे कर्मों को मुझ परमात्मा में अर्पण करके ज्ञान वान् होकर अपने २ धर्मों को करै तो आनंद ही आनंद है ॥ ज्ञानी लोग भी प्रकृति के प्रेरे हुए कर्म करते ही हैं कर्म से बचने का अभिमान वो क्या करसकते हैं परंतु विषयों में राग यानी प्रीति और द्वेष इन दोनों से ज्ञानी जुदे रहते हैं वे राग और द्वेष को डाकू समझते हैं ॥ अपना धर्म घांटे गुण वाला या निर्गुण भी अच्छा है और पराया धर्म कैसा ही श्रेष्ठ हो वो कल्याण कारी नहीं है ॥

अर्जुन अब पूछता है कि मनुष्य किस का प्रेरा हुआ पाप में प्रवृत्त हो जाता है ॥ तो भगवान् फरमाते हैं कि काम और क्रोध यह दो बडे भारी भक्षण करने वाले हैं यह ज्ञान को ढककर बुद्धि को बिगाड देते हैं ॥ इस लिये मन और इन्द्रियों को बस में रखकर इन पापी काम और क्रोध से बचा रहै अपने स्वरूप का ज्ञान रक्खै येही उत्तम पक्ष है ॥

इति कर्म योग नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

॥ चौथा अध्याय ॥

(रागिनी भैरवी)

अबचौथीअध्याय सुनाऊं हरिगुरु चरणकमल सिरनाऊं ॥
पुनिसन्तनपदसीसनवाऊं जिनकेवशश्रीकृष्णमुरारी ॥१॥
१–हरि बोले यह योग पुरातन सूरज प्रति कीनो मैं वरणन ॥
सूरज सों मनु पायो यह धन भवबंध नजो देत निवारी ॥२॥

२–इक्ष्वाकू नृप मनु तैं पायो इम राजर्षिनपै चलआयो ॥
३ सो मैं तोकौं कहिसमझायो तूममभक्त सखासुखकारी ॥३॥
५–मेरे तेरे जन्म अनेका मैं जानूं तोय नांहि विवेका ॥
६ अज अविनाशी हूं मैं एका कृपा हेतु बहु कायाधारी ॥४॥
७–जब जब हानि धर्म की पाऊं बढै पाप तबही प्रगटाऊं ॥
८ दुष्ट नसाऊं धर्म रखाऊं करूं साधुजन की रखवारी ॥५॥
९–जन्म कर्म मेरे दिव्य जो जानै तत्व विचार हिये दृढआनै ॥
सो पावै मोय चतुर सयाने या विचार मैं सुखहै भारी ॥६॥
१०–हिये चाह भयक्रोध नजाके मम आश्रित मो मैं मनराखै ॥
ज्ञानके तपसे शुद्धी पाकै मोकों प्राप्त भये अधिकारी ॥७॥
११–भजैं मोहिजाभावसे सतजन करूंमैं तिसविधइच्छापूरन ॥
मेरेहि पंथ चलैं सगरे जन पावैं मन वाञ्छित संसारी ॥८॥
१२–चहैं कर्मफल पूजैं देवन बेगि मनोरथ पावैं सबजन ॥
१३ चारवरण रचि गुण भेदनतैं मम आत्माहै सबसे न्यारी ॥९॥
१४–लिप्त होउं नहिं कर्मन मांही फलकी इच्छा राखूं नाहीं ॥
१५ अमविचारहोंयमुक्तसदाहीं तुमहुकर्मकरहोउसुखारी ॥१०॥
१७–कर्म विकर्म अकर्महि जानौ कर्मकी गती गहन पहचानौ ॥
१८ कर्ममेंलखैअकर्मसयानो कर्महि लखौअकर्ममंझारी ॥११॥
१९–फलकी इच्छा उर नहि लावै ज्ञान अग्नि सों कर्म जरावै ॥
२० सो पंडित नित तृप्त कहावै रहै अकर्ता कर्म प्रचारी ॥१२॥

२१—बिना मनोरथ मन बस करके बंधन मूल मैं चिन्तन धरके ॥
केवल देहकर्म अनुसरके होत न पापनको अधिकारी॥१३॥
२२—सहन शील सन्तोषी जोनर वैर रहित समता फलमें कर ॥
करैकर्म याभांत चतुरवर फंसैनबंधन मांहि खिलारी ॥१४॥
२३—निस्कामी अरु मुक्तहु ज्ञानी जज्ञ हेत करणी जिन ठानी ॥
उनकीकरनीसकलबिलानीजानज्ञानगतिअपरंपारी॥१५॥
२४—यज्ञ पात्र सामग्री सारी कर्ता और अगिन जो जारी ॥
सकलवस्तुजिणब्रह्मनिहारीब्रह्महिपावतसोमतिधारी ।१६॥
२५—देव हेत कोइ यज्ञहि करते ब्रह्म अगिन कोउ यज्ञहि धरते ॥
२६ संयम यज्ञकोऊ आचरते होमतविषयन इन्द्रिमंझारी ॥१७॥
२७—इन्द्रियअरु प्राणनकी करणी संयम योग अगिनमैं धरनी ॥
ज्ञानकीज्वालामेंसबजरनीकोउअसजज्ञकीरीतविचारी।१८॥
२८—द्रव्य योग तप यज्ञमैं कोई कोउ स्वाध्याय ज्ञान रत होई ॥
नानायज्ञरचेविधि सोई करतयथामति मुनिआचारी ॥१९॥
२९—पूरक रेचक कुंभक तीनौ यज्ञ ये कर योगिन सुख लीनो ॥
३० प्राणहोमप्राणनमैं कीनोइमसुखपावतनियतअहारी ॥२०॥
३१—यह सब यज्ञन के हैं ज्ञाता यज्ञ किये पातक मिट जाता ॥
यज्ञबचे अमृत जो खाता ब्रह्मप्राप्तिको सो अधिकारी ॥२१॥
३३—द्रव्य मयी यज्ञन सै उत्तम ज्ञान जज्ञ है श्रेष्ठ अनूपम ॥
सबकर्मनकोफलअध्यातमज्ञानमेंलीनहोतसुविचारी।२२॥

३४—नम्र भावसे गुरुपै जावै प्रश्न करै पुन पुन सिर नावै ॥
तब ज्ञानी उपदेश सुनावै जासे होय मोह भ्रम छारी ॥२३॥
३५ से ३७ तक—आतम अरु परमात माहीं ज्ञान से चर अरु अचर लखाहीं ॥
ज्ञान अगिन में कर्म जराहीं काठै अग्नि देत जिम जारी ॥२४॥
३८—ज्ञानसे अधिक पवित्र न कोई योग किये सो प्रापत होई ॥
३९ श्रद्धाअरुसंजमतैंसोहीमिलैशान्तिनितभवभयहारी ॥२५॥
४०—अज्ञ मनुज संदेह भरयो जो नष्ट होय परमारथ मैं सो ॥
ज्ञान से सारे संशय कौ धो अर्जुन तैं यों कहत मुरारी ॥२६॥
कर्म योग अरु ज्ञानयोग कौ समझै जो नर मुक्त होय सो ॥
या विध कर्म ज्ञान तत्परहो कृपाकरै मथुरेश विहारी ॥२७॥

॥ चौथे अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

भगवान आज्ञा करते हैं कि यह उपदेश जो मैं ने तुझ कौ किया है पहले सूर्य कौ कियाथा सूर्य ने मनुजी कौ सुनाया और मनु से इक्ष्वाकू राजा ने पाया इसी तरह राजऋषियों पर चला आता है। तेरे अनेक जन्म होचुके हैं और मैं भी अनेक वार शरीर धारण करके प्रगट होता हूं। परन्तु तू पिछले जन्मों का हाल नहीं जान्ता मैं जान्ता हूं। मैं अजन्मा और अविनाशी हूं परन्तु संसार मैं जब २ धर्म का नाश और अधर्म बढने लगता है तौ मैं प्रगट होकर धर्म की रक्षा करके दुष्टों को दंड देता और साधुओं की रक्षा करता हूं। जो मेरे अलौकिक जन्म और कर्मों कौ जान्ता है वो विचारवान् सुखी रहता है और जो मनुष्य किसी वात की चाह नहीं रखता और भय और क्रोध नहीं रखता केवल मेरी शरण हो कर मुझ मैं ही मन लगाये रहता है

है वो ज्ञान रूपी तप से शुद्धि को पाकर मुझ को प्राप्त होता है ॥ जिस भाव से मुझे कोई भजे उसी भाव से मैं उसकी इच्छा पूरण कर देता हूं ॥ जो लोग कर्म का फल चाहते और अन्य देवों को भजते हैं उन की कामना भी मैं ही पूरी करता हूं ॥ मैं ने गुण और कर्म के भेद से चार वरण रचे हैं परन्तु मैं किसी कर्म में लिप्त नहीं होता और न किसी कर्म के फल की इच्छा रखता हूं तुम को भी इसी प्रकार असंग और इच्छा रहित होकर कर्म करना चाहिये । कर्म विकर्म और अकर्म इन तीनो को जानो, वेद ने जिन की आज्ञादी है वे कर्म हैं जिन का निषेध किया है वे विकर्म हैं और सर्व कर्म रहित होना अकर्म है । कर्म करते हुए भी अपने को कर्ता न मान्ना यह अकर्म है और अकर्म जो कर्म शून्य आत्मा है उस में जो कर्तापने की बुद्धि हो रही है उस को विवेक दृष्टि से देखना यह ज्ञानी पुरुषों का कर्तव्य है । जो कर्म फल की इच्छा नहीं रखता उस के कर्म ज्ञान रूपी अग्नि से भस्म होजाते हैं क्योंकि वो आत्मा को अकर्ता समझ रहा है । इच्छा रहित होकर मन को वस में करके जो देह के आवश्यक कर्म करता है वो पापों के बंधन में नहीं आता । दुख सुख को सह कर फल की सिद्धी असिद्धि को बराबर जान कर वैर रहित होकर जो कर्म कर्ता है वो बंधन में नहीं आता । ज्ञानी पुरुष निस्कामी और मुक्त होकर भी यज्ञादिक कर्म करते हैं तो उस से भी वो बंधन में नहीं आते । वो ज्ञानी लोग यज्ञ की सारी सामग्री और पात्र और अग्नि और यज्ञ कर्ता सब को ब्रह्म रूप ही जान्ते हैं इस लिये स्वर्ग आदि फल भोग के बंधन में न आकर ब्रह्म रूप ही होजाते हैं । कोई देव के अर्थ यज्ञ करते हैं कोई ब्रह्म रूप अग्नि में होमते कोई मन और इन्द्रियों को रोक कर संजम रूपी यज्ञ करते विषयों को इन्द्रियों में होमते हैं । कोई इन्द्रिय और प्राणों के कर्तव को संजम योग की अग्नि में हवन करते हैं । द्रव्य यज्ञ, तप यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, इन को यती लोग करते हैं । अपान वायु में प्राण वायु को और प्राण वायु में अपान को हवन करके प्राण और

अपान की गति को रोककर योगी प्राणायाम करते हैं। कोई योगी नियत आहार करके प्राणों में प्राणों को होमते हैं इन यज्ञों के करने से पाप दूर हो जाते हैं ॥

ऊपर जो योग के साधन बतलाये गये हैं वे महात्मा योगीजन जान्ते हैं उन्ही से सीखने में आसकते हैं। द्रव्य मयी यज्ञों से ज्ञान मयी यज्ञ श्रेष्ठ है वो ज्ञान गुरु की सेवा से प्राप्त होता है। जिस ज्ञान से आत्मा और परमात्मा का स्वरूप जानेगा और चर और अचर सब को तू मेरे और अपने निज रूप में देखेगा ! ज्ञान रूपी अग्नि सब पापों को जला देती है। ज्ञान से अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं है। सो योग करने और श्रद्धा से प्राप्त होता है ॥

इति कर्मब्रह्मार्पण योग नाम चतुर्थ अध्यायः ॥ ४ ॥

॥ पांचवीं अध्याय ॥

(रँगभीना तोरी आंखडली गोपीपर जादू डारे, इस तरज में गाना)

१—अब अध्याय पांचवीं में अर्जुन पूंछे कहौ यदुराई ॥
कर्म त्याग अरु योग कहे दोउ श्रेष्ठ कौन देउ समुझाई ॥१॥
२—कहैं कृष्ण दोउ मार्ग जीव को निश्चय ही कल्याण करैं ॥
तौहु त्याग से कर्म योग ही मेरे मत में अधिकाई ॥२॥
३—इच्छा और द्वेश नहि राखै सुख दुख में समता राखै ॥
सो नर त्यागी सन्यासी है कर्म बंध से छुट जाई ॥३॥
४—सांख्य तत्व और योग यह दोनों भिन्न नहीं एकहि जानो ॥

५ फल दोउन को एकहि मानौ भिन्न गिने नहीं चतुराई ॥४॥
६—योग बिना संन्यास न आवै योगी ब्रह्म से मिल जावै ॥
से शुद्ध चित्त जो मन इन्द्रिय जित सर्वात्म दृष्टी पाई ॥५॥
कर्म करत हू नाहि बंधे जो मानै अकर्ता अपने कों ॥
१२ देखत सुनत छुअत सूंघत अरु खात चलत सोवत भाई ॥६॥
तक सगरे कर्म करत यों जानै बरतैं इन्द्रिय विषयन में ॥
ब्रह्म कों अरपै कर्म संग तज बंध मुक्त सो ह्वै जाई ॥७॥
१३—मनसे सकल कर्म फल तज के तनकों जो बस में राखै ॥
सो कछु करत करावत नाहीं देह मांहि रहै हरषाई ॥८॥
१४—कर्ता पन अरु कर्म पनो संयोग कर्म फल यह तीनों ॥
आतम देव नहीं उपजावै सब स्वभाव सै प्रघटाई ॥९॥
१५—काहु जीव के पुन्य पाप को भागी है ईश्वर नाहीं ॥
ढक्यो ज्ञान अज्ञान से यातैं प्राणी आपहि भरमाई ॥१०॥
१६—ज्ञान से जब अज्ञान विनाशै ज्ञान प्रकाशै सूरज सम ॥
१७—भगवत मैं मन बुद्धि समर्पै आवागमनसों छुटजाई ॥११॥
१८—विप्र गऊ हाथी अरु कूकर चांडाल देहन भीतर ॥
समता दृष्टी जो जन राखै सो पंडित जानौ भाई १२॥
१९—समता भाव हिये जो राखै इष्ट अनिष्ट समान गिनै ॥
२० सो थिर बुद्धी जग कों जीतै अचल ब्रह्म मैं रमजाई ॥१३॥
२१—शब्दादिक विषयन से न्यारो योगि आत्मा राम सुखी ॥

२२ चतुरविषयभोगनकौसमझे सदाअनित्य अरुदुखदाई १४॥।।
२३—सहै काम अरु क्रोध वेग कौ जीवतही सो नित्य सुखी ॥
२४ अन्तर माहीं रमैं जोत मैं ब्रह्म रूप सो ह्वै जाई ॥१५॥
२५—पाप रहित मन जीत ऋषी जो संशय उर मैं नहि धारै ॥
२६ सब जीवन के हित मैं तत्पर सोही ब्रह्म लेत पाई ॥१६॥
२७—बाहिर कर शब्दादि विषय कों भौंहन बीच नज़र जोरै ॥
प्राण अपान वायु सम कीजै संचारी नासा मांई ॥१७॥
२८—इन्द्रिय मन बुद्धी बस करके इच्छा भय क्रोधै त्यागै ॥
जीवन मुक्त सोहि घनहैनर नित्य मोक्ष सुख अधिकाई १८॥
२९—सर्व लोक पति तप यज्ञनको फल भोगी अरु भूतहितू ॥
श्रीमथुरेश हरी कौ जानै लहै शान्ति सुख सो भाई १९॥

॥ पांचवीं अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

श्रीमहाराज कृष्णचंद्रजी आज्ञा करैं हैं कि कर्म सन्यास और कर्म योग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं तथापि मेरे मत मैं कर्म योग ही श्रेष्ठ है ॥ जो मनुष्य इच्छा और द्वेष न रखकर सुख दुख कौ समान गिनै वो सन्यासी ही है और कर्म के बंधन से छूट जावैगा। सांख्य तत्व (ज्ञान योग) और योग दोनों मैं कोई भेद नहीं है फल एक ही है। योग के बिना सन्यास नहीं होसकता इन्द्रियों कौ जीतने वाला योगी शुद्ध चित्त होकर ब्रह्म कौ प्राप्त होवै है। जो मनुष्य चलते फिरते सब काम करते हुए अपने कौ अकर्ता माने अर्थात् यह समझता रहै कि देह कर्म करैं है मैं साक्षी और असंग हूं ऐसे

विचार वाला कर्मों के बंधन मैं नहीं फँसता है। मन से फल की इच्छा न करके तन को वस मैं रक्खे वो न कुछ करता न कराता है। कर्ता पना और कर्म पना और कर्म के फल का संजोग यह तीनों स्वभाव (प्रकृति) से होवैं हैं आत्मा इन कौ नहीं उत्पन्न करै है। ईश्वर किसी पुन्य पाप का भागी नहीं होता ज्ञान कौ अज्ञान ढक लेता है इस कारण से जीव भरम जाता है। जब ज्ञान रूपी सूरज उदय होता है अज्ञान नष्ट होजाता है। मन और बुद्धि कौ भगवत मैं अर्पण करदे तौ आवागमन से छूटजाता है। ज्ञानी की दृष्टि मैं गऊ हाथी कुत्ता और चांडाल बराबर हैं अर्थात् सब प्राणियों में परमात्मा का अंश देखते हैं इस कारण उन के भेद भाव नहीं है। ऐसे विचार वाला इष्ट मित्र और अनिष्ट जो अपने से वैर रक्खे सबकौ समान मान्ता है वोही थिर बुद्धि ब्रह्म कौ प्राप्त होता है। आत्मा में रमण करने वाला योगी शब्द आदिक इन्द्रियों के विषयों से न्यारा रहकर विषय भोग कौ अनित्य और दुख दाई समझै है। काम और क्रोध के वेग कौ सहन करके सदा आनंद मैं मगन रहता और अंतर मैं ज्योति का दर्शन करता हुआ ब्रह्म रूप होजाता है पाप से रहित जो ऋषि मन कौ जीतकर किसी प्रकार का संदेह नहीं रखता और सब जीवों की भलाई मैं लगा रहता है वोही ब्रह्म कौ पाता है॥

शब्द आदिक विषयों कौ बाहिर निकाल कर दोनो भोवों (भृकुटी) के बीच मैं नज़र जमा के प्राण और अपान वायु कौ नाक के भीतर संचारी रखकर मन और बुद्धि और इन्द्रियों कौ वस मैं करलेवै और इच्छा द्वेष भय कौ त्याग देवै सो मनुष्य जीवन मुक्त और धन्य है वो नित्य सुख मोक्ष कौ पावै है। (भृकुटी के मध्य में दृष्टि जमाना यह साधन इसी भगवत वाक्य से चला है) अन्त मैं भगवान् फ़रमाते हैं कि सब लोकों का स्वामी और

तप यज्ञ आदिकों का फल भोगने वाला सारे प्राणियों का हित करने वाला जो मैं हरि परमात्मा हूं उस के जान्ने और उस की शरण होने से शान्ति और सुख प्राप्त होता है ॥

इति कर्म संन्यास योगो नाम पंचमो अध्यायः ॥ ५ ॥

॥ छटा अध्याय ॥

(लावनी की तर्ज़ में गाना)

१—सुनौ छटी अध्याय कर्म फल त्याग योग्य जो कर्मकरै ॥
वोहि सन्यासी योगी है तजे अग्नि क्रिया न कह्यो जावै ॥१॥
२—त्रिन संकल्प तजे नहि योगी कर्म है कारन साधन मैं ॥
३ योगप्राप्त मुनिकों हितकारी शान्तिहिये सुख उपजावै ॥२॥
४—इन्द्रिय विषयन अरु कर्मन मैं जोन फँसे इच्छा त्यागी ॥
एसो जन मन बस करले तव पूरन योगी कहिलावै ॥३॥
५—मनकी उन्नतिकर विचार से मनहि मित्र है मनहि रिपू ॥
६ बस मैं आयो मन बंधू है बेबस बैरी बन जावै ॥४॥
७—मन जीतै जो शान्त चित्तहो सुख दुख मैं सममान रहित ॥
८ ज्ञान युक्त योगी कहिये तेहि लोह कनक सम दरसावै ॥५॥
९—हितू रिपू अरु साधु असाधू सब कौं एक समान गिनै ॥
१० इच्छा ममता रहित संजमी बैठ इकान्त ब्रह्म ध्यावै ॥६॥

११—शुचि अरु समभूमी मैं थिरआसन मृगचर्म चैलकुशपर ॥
१२ मन इकाग्र कर संयम युत तहां साधन मैं चितकौ लावै ॥७॥
१३—काया मस्तक ग्रीवा कों सम राख अचल थिर ध्यान धरै ॥
नाक अनी पर दृष्टि जमावै इत उत नज़र नहीं जावै ॥८॥
१४—शान्त चित्त निर्भय ब्रह्म चारी मो मैं चित्त वृत्ति धारै ॥
१५ ऐसो योगी परम शान्ति मय मो मैं स्थिति कौं पावै ॥९॥
१६—अति खाये अति भूक मरे अति सोये वा अति जागे सों ॥
योग पदारथ अस साधन से कबहू हाथ नहीं आवै ॥१०॥
१७—युक्त अहार बिहारादिक के योग सर्व दुख दूर करै ॥
१८ इच्छा रहित चित्त आतम गत होय युक्तसो कहिलावै ॥११॥
१९—पवन बिना जिम दीप न हालै तिम योगी चित अचल रहै ॥
२० योगतैं शान्त चित्तयोगी निजआत्म दरसकर सुखपावै ॥१२॥
२१—इन्द्रिन अगम लभ्य बुद्धी सै आतिसुख लहैं अचल थिरहो ॥
२२ वामै अधिक लाभनहि मानै कबहु न मनकौ भटकावै ॥१३॥
२३—नहीं दुःख संबंध योग मैं सो अवश्य करनो चहिये ॥
२४ सकल बासना रहित चित्तसौं इन्द्रिन कौं बस मैं लावै ॥१४॥
२५—धीरे धीरे चित्त रोकके विषयन तैं मन कौं योगी ॥
२६—जित जितजायखैंचकरतितसौं आतममैंमनबिलमावै॥१५॥
२७—शान्त चित्त योगी अति सुखिया ब्रह्म लहै हो पाप रहित ॥
२८ सदा आत्मा राम ब्रह्म को परस महा सुख कौं पावै ॥१६॥

२९–सब भूतन मैं लखै आत्मा भूतन कौ आतम मांहीं ॥
३० मोंकों सब ठांमो मैं लवै सो मोहि न बिसरै बिसरावै ॥१७॥
३१–मोहि भजे सब ठौर जान के सुख दुख सब को अपने सम ॥
३२ सो योगी नितमो मैं बरतै परम योग यहि कहिलावै ॥१८॥
३३–अर्जुन कहै नाथ यह समता भाव कौन विध ठैर सकै ॥
३४ मनअतिचंचलपवनसमानसो बंधनमैं क्योंकरआवै ॥१९॥
३५–हरि बोले मन चपल अवश्यहि कठिनहै याको वस होनो ॥
३६ नित अभ्यास और वैराग से जतन किये वस होजावै ॥२०॥
३७ स–फिर पूछैं अर्जुन जो योगी साधन करत हु चल चितहो ॥
३९त. डिगै योग से भ्रष्ट भयो सो कहौ वो कौन गती पावै ॥२१॥
४०–श्रीभगवान् कहैं साधक की दुर्गति कबहू ना होवै ॥
से उत्तम लोक जाय सुख भोगै मर्त्यलोक मैं फिरआवै ॥२२॥
४२ व. अति पवित्र श्रीमानों के घर अथवा योगिन के कुलमैं ॥
४३ तक जन्म धारके पहली, संचित पाय जतन मैं लग जावै ॥२३॥
४४–पूर्व किये अभ्यास के बलसे बंध मुक्त सो होय अवश्य ॥
जिज्ञासू भी वैदिक कर्म गती से परे पहुंच जावै ॥२४॥
४५–जतन हि करते करते योगी शुद्ध चित्त हो पाप रहित ॥
सिद्ध अनेक जन्म मैं होकर परम गती निश्चै पावै ॥२५॥
४६–तपसी ज्ञानी अरु कर्मी तैं योगी अधिक है मो मतमैं ॥
यातैं अर्जुन योग साधिये योगहि तैं सिद्धी पावै ॥२६॥

४७—वा जन कौ मैं सब योगिन मैं अधिक गिनूं जो श्रद्धासे ॥
मो मथुरेश मैं चित्त लगाके भजै सो मोकों अति भावै —४७॥

॥ छटी अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

भगवान् आज्ञा करैं हैं कि कर्म के फल कौ न चाहकर योग्य कर्म जो करै वोही सन्यासी और वोही योगी है अग्निहोत्र और कर्म के त्याग देने से सन्यासी या योगी नहीं होसकता। जबतक मन के संकल्प (इच्छा) कौ न तजै योगी नहीं है योग के साधन मैं कर्म सहायक है और जब योग सिद्ध होजावै तौभी कर्म हितकारी और शान्ति का देने वाला है। इन्द्रियों के विषयों और कर्मों मैं जो न फँसे और इच्छा का त्याग करै ऐसा मनुष्य जब मन कौ बस मैं करले तब पूरन योगी कहलाता है। मन का उद्धार मन के विचार से करै मन ही जीव का मित्र है और मन ही शत्रु है। बस मैं आया हुआ मन मित्र है और बस के बाहिर मन वैरी है। जो मन कौ जीत कर शान्त चित्त होय सुख दुख कौ समान समझै और अभिमान रहित हो वो ज्ञानी योगी है उसे लोहा और सुवर्ण बराबर है। शत्रु मित्र और साधु अ-साधु कौ जो बराबर समझै इच्छा ममता रहित होकर संजम के साथ एकान्त मैं बैठकर ब्रह्म का ध्यान करै पवित्र भूमि मैं जो नीची ऊंची न हो चैल और मृगछाला और कुशा का आसन लगाकर उस पर एकाग्रह मन से बैठकर योग साधना करै। काया और मस्तक कौ एक सीध मैं रखकर अचल और थिर होकर नाक की अनीपर दृष्टि कौ जमावै और शान्ति के साथ निर्भय ब्रह्मचर्य मैं रहकर चित्त वृत्ति कौ मेरे मैं लगावै तौ मुझ कौ ही प्राप्त होय। ज्यादा खाने या भूखा रहने या ज्यादा सोने और अधिक जागने से योग सिद्ध नहीं होता इस लिये खाना, पीना, चलना, फिरना, सोना, जागना, सब अन्दाजे का होना चाहिये उस से

सब दुख दूर होते हैं। ऐसा योगी जो इच्छा रहित होकर आत्मा मैं चित्त लगाये रहै सो युक्त कहलाता है। जैसे हवा न लगने से दीपक अचल रहता है ऐसा चित्त रहना चाहिये तब वो शान्त होकर आत्मा के दर्शन करके सुखी होता है। जो सुख इन्द्रियों से नहीं मिलसकता केवल बुद्धि ही उसे जान सकती है सो योगी कौ प्राप्त होता है। उस आनंद से अधिक कोई लाभ उसे नज़र नहीं आता और चित्त कौ भटकने नहीं देता। योग मैं दुख का संबन्ध नहीं है ज़रूर करना चाहिये। इच्छा रहित चित्त से इन्द्रियों कौ बस मैं लावै और विषयों से मन कौ धीरे २ हटाकर जिधर मन जाय उधर से खींच कर आत्मा मैं लगावै। ऐसा शान्त योगी पापों से छूटकर सदा आनंद मैं रहता और ब्रह्म का स्पर्श कर लेता है। सब प्राणियों मैं आत्मा कौ और आत्मा मैं सब कौ देखै और मुझ परमात्मा कौ सब जगह और सब कौ मुझ मैं देखै उसै मैं कभी नहीं विसारता न वो मुझे कभी भूलता है। जो मुझे सब जगह जानकर भजता और सब के सुख दुख कौ अपने सुख दुख की बराबर गिनता है वो मेरे मैं ही सदा बरते है इस कौ परम योग कहते हैं॥

अर्जुन पूछता है कि मन बडा हटीला और चंचल है इस का रोकना हवा के रोकने की समान कठिन है यह कैसे बस मैं आवै॥

तब आप फ़रमाते हैं कि निस्संदेह मन ऐसा ही है परंतु नित्य अभ्यास और वैराग्य से बस मैं आजाता है॥

फिर अर्जुन ने पूछा कि योग साधन करते करते जो मन योगी का डिग जावै तौ उस योग से भ्रष्ट योगी की क्या गति होगी॥

तब भगवान् आज्ञा करते हैं कि योग साधन करने वाले की दुर्गति कभी नहीं होती वो योग से गिरा हुआ भी पवित्र ऊंचे लोकों मैं जाकर सुख भोग करके मर्त्य लोक में श्रीमानों या योगियों के ही कुल में जन्म लेता है और पहले योग के संस्कार के बल से फिर उसी योग साधन के

जतन में लगजाता है और साधन करके बंधन से छुट जाता है। ऐसा जि-ज्ञासूभी वैदिक कर्म गति से ऊंचा दरजा पाता है। यत्नों को करता हुआ योगी निश्चय करके पापों से छुटकर परमपद को प्राप्त होही जाता है॥ हे अर्जुन तपासियों और ज्ञानियों और कर्मियों से योगी उत्तमहै इस लिये योग साधन अवश्य करना चाहिये और योगियों में भी मेरे मत में वो उत्तम और श्रेष्ठ है जो श्रद्धा और विश्वास करके मुझ में मनलगाये हुए मुझे ही भजता है॥

इति आत्मसंयम योग नाम छटा अध्यायः॥ ६॥

॥ सातवीं अध्याय ॥

(रेखता)

परम हित कारिणी गीता महारानी है सुख दाई॥
करूं अब सातवीं अध्याय का वर्णन सुनौ भाई॥१॥
१—कहैं श्रीकृष्ण मुझ में मन लगा मेरे भरो से रह॥
२ मुझ जिस भांत जानो सो कहूं अब तुम को समुझाई॥२॥
३—हजारों मैं कोई इक नर जतन कर्ता है सिद्धी कौं॥
जतन कर्ता हजारों मैं मुझे विरला हि लख पाई॥३॥
जो भूमी जल अगिन वायू गगन मन धी अंहता यह॥
प्रकृती मेरी हैं आठों हि अपरा नाम कहलाई॥४॥
परा मेरी प्रकृती जीव है जिस से जगत धारूं॥
ये योनी सारे भूतों की इन्हीं मैं सृष्टि उपजाई॥५॥

४/५ ८

श्लो ७ मैं हूं सब जगका कर्ता और संहर्ता नहीं दूजा ॥
मेरे मैं सूत मैं मणियों की न्याईं जग है समुदाई ॥६॥
८—मैंही रस रूप हूं जल मैं चमक हूं चंद्र सूरज मैं ॥
प्रणव वेदों मैं शब्द आकाश मैं नर मैं पुरुषताई ॥७॥
९—सुगंधी रूप हूं पृथ्वी मैं हूं मैं तेज अग्नी मैं ॥
मैं जीवन प्राणियों मैं तप हूं तपसी जन विषें भाई ॥८॥
१०—सनातन बीज जीवों का हूं बुद्धी बुद्धिमानों मैं ॥
मेरी ही जानिये तेजस्वियों मैं तेज अधिकाई ॥९॥
११—मैं बलवानों मैं बल हूं हो जो काम अरु रागसै वर्जित ॥
मैंही धर्माविरोधी काम हूं जो सृष्टि उपजाई ॥१०॥
१२—जो सत रज तम गुणों की सृष्टि सो मुझ से ही उपजी है ॥
१३ मैं उससे न्यारा हूं जानै नहीं मति जिस की भरमाई ॥११॥
१४—मेरी इस दैवी माया से कठिन है पार होजाना ॥
वोही केवल तरै जिसने शरन मेरी है दृढ पाई ॥१२॥
१५—अधम नर मूर्ख पापी अरु जो हैं माया के वहिकाये ॥
जो आसुर भाव हैं चारौ रहैं मुझ से अलग भाई ॥१३॥
१६—मुझै पुन्यात्मा भजते हैं इनही चार भावों से ॥
दुखी जिज्ञासु कामार्थी तथा जो ज्ञान निध पाई ॥१४॥
१७—विशेष इन मैं है ज्ञानी एक मेरी भक्ति जो राखै ॥
मैं उसको वो मुझै प्यारा रहै मेरे मैं मन छाई ॥१५॥

१८—जो चारौ श्रेष्ठ ही हैं ज्ञानी तौ है आत्मा मेरी ॥
परम फल हूं मैं उसकौ नित्य मुझ मैं प्रीत अधिकाई ॥१६॥
१९ अनेकौं जन्म मैं वो ज्ञानी होकर मुझ कौ भजता है ॥
जिसै मैं सब जगह दीखूं कोई विरला हि दरसाई ॥१७॥
२० से २२ तक —जो लोभी कामना के अन्य देवों कौ भजैं मूरख ॥
दिवाऊं उनके फल मैं ही करूं भक्तों की मन भाई ॥१८॥
२३—मिलै जो फल उन्हे वो है विनाशी बुद्धि हीनों का ॥
जिसै ध्यावैं उसै पावैं मेरे जन मुझ कौ लैं पाई ॥१९—
२५—अलौकिक रूप कौ मेरे वो मूरख जन नहीं जानै ॥
ढकी है योगमाया से अनूपम मेरी प्रभुनाई ॥२०॥
२६—मैं तीनों काल की सृष्टी कौ जानूं कोई ना मुझ कौ ॥
२७ फँसे सुख दुख के फँदे मैं हैं मोहित जीव समुदाई ॥२१॥
२८—मिटा है पाप जिन पुन्यात्माओं का भजैं मुझ कौ ॥
जरा अरु मर्ण से छुटने कौ मेरी दृढ शरन पाई ॥२२॥
वे पूरण ज्ञानी मुझ कौ जान्ते हैं आश्रय सबका ॥
लैहैं मरती समै मथुरेश हरि मैं मन की मगनाई ॥२३॥

॥ सातवीं अध्याय का सार वार्ता में ॥

श्रीकृष्ण महाराज उपदेश करते हैं कि मुझ परमात्मा मैं मन लगा और मेरा भरोसा रख जिस प्रकार से तू मुझको जान सकैगा वो कहता हूं । हज़ारों

मनुष्यों मैं कोई एक उत्तम गति मिलने के वास्ते यत्न किया करता है और उन यत्न करने वालों हज़ारों मैं कोई एक मुझे जानपाता है । पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ वायु ४ आकाश ५ मन ६ बुद्धि ७ अहंकार ८ यह आठ मेरी प्रकृति अपरा नामसे बोली जाती हैं और जीवआत्मा मेरी परा प्रकृति है जिस से मैं जगत् को धारण करता हूं सारे जगत् की योनि यह प्रकृति ही है। मैं ही जगत् का रचने वाला और संहार करने वाला हूं सब जगत् मुझ मैं ऐसे पिरोया हुआ है जैसे सूत मैं माला के मनिये । अब भगवान् अपनी विभूति वर्णन करते हैं । जल मैं रस रूप मैं हूं, चंद्रमा और सूरज मै चमक मैं ही हूं, वेदों मैं ओंकार, आकाश मैं शब्द, पुरुषों मैं पुरुषार्थ मेरा स्वरूप है, पृथ्वी मैं सुगंधि, अग्नि मैं तेज, प्राण धारियों मैं जीवन, तपसियों मैं तप रूप मैं ही हूं, जीवों का सनातन बीज, बुद्धि मानों मैं बुद्धि, तेज धारियों मैं तेज मैं हूं, और बली जीवों मैं वह बल मैं हूं, जो काम और राग से रहित होवै, सृष्टि पैदा करने वाला धर्म के अनुकूल जो काम है सो मेरा ही रूप है, सत्व, रज, तम, इन गुणों से जो सृष्टि होती है वो मुझ से होती है परंतु मैं उन से न्यारा हूं इस बात को मंदमति नहीं जान सकते । मेरी माया के फंदे से निकलना अत्यन्त कठिन है केवल वो लोग उस से बचसकते हैं जो दृढ भाव से मेरी शरण होजाते हैं। अधम नीच, मूर्ख, पापी, और आसुरी भाव रखने वाले मेरी माया से भरमाये हुए यह चारों मुझे नहीं पासकते। चारप्रकार के मेरे भक्त हैं एक संसार के दुखों से घबराये हुए मेरी शरण मैं आने वाले दूसरे जिज्ञासु ज्ञान की इच्छा रखने वाले, तीसरे किसी प्रयोजन के लिये और चौथे ज्ञानी । इन चारों मैं एकता भाव रखने वाले ज्ञानी विशेष समझे जाते हैं मैं उन को और वे मुझे प्यारे हैं । चारों प्रकार के भक्त उत्तम हैं तोभी ज्ञानी भक्ततो मेरी आत्मा ही है । अनेक जन्म मुझ मैं मन लगाये हुए ज्ञानी मुझे भजता है जिस संसारी मैं सब जगह दीखूं ऐसा कोई विरला ही होता है । जो लोग संसारी कामना के लोभी और देवताओं को भजते है उनको

भी फल मैं ही देता हूं परन्तु वो फल नाशमान होता है। जिस देवता को जो भजे वो उसी को पाता है मेरा भक्त मुझे पाता है। मेरे अलौकिक स्वरूप को मूर्ख नहीं जान सकते। मैं तीनो काल की सृष्टि को जानता हूं जीव सुख दुख के फन्द मैं फँसे हुए मुझे नहीं जानते। जिनका पाप मिट जाता है वे पुन्यात्मा मुझ को भजकर जरा और मरण से मेरी शरन होकर छुट जाते हैं। वे पूरण ज्ञानी सारे जगत् का आधार मुझ को जानते हैं और मरने के समय भी उन का मन मेरे मैं ही लगा रहता है॥

इति ज्ञानविज्ञान योगो नाम सप्तमो अध्यायः॥ ७॥

॥ आठवाँ अध्याय ॥

(रागनी सोहनी अथवा कव्वाली मैं गाना)

गीताजी की आठवीं अध्याय सुनिये दिल लगा॥
सात प्रश्नों का ये उत्तर हरिने अर्जुन से कहा॥१॥
३—ब्रह्म अक्षर है परम अध्यात्म जान स्वभाव को॥
४ सृष्टि रचना कर्म है अधिभूत नाम विनाशि का॥२॥
४ पुरुष हैं अधिदैव सब का पूज्य मैं अधियज्ञ हूं॥
मैं वो अन्तर्यामि हूं देहों मैं सबके बस रहा॥३॥
५—अन्त मैं मुझ को जो सुमिरे मुझ को ही पावै अवश॥
उस समय जो जिसको सुमिरे वो उसी को पायैगा॥४॥
७—मुझ को सुमिरो बुद्धि मन से पालो अपने धर्म को॥

८ योग अभ्यासी अचल चित से भजे ले मुझको पा ॥५॥

९—दिव्य जो पर पुरुष है सर्वज्ञ शिक्षक अरु अनाद ॥
सबका धारक चिन्तवन जिस्के न होवै रूपका ॥६॥
से जो प्रकाशक ज्ञान मय है सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ॥
भक्ति अरु अभ्यास वल से चित्त को उसमैं लगा ॥७॥
१० प्राण वायू मध्य मैं भौंवौं के विधि से धारके ॥
तक देह छोडै सो उसी पर पुरुष को पावै सदा ॥८॥

११—परम पद की प्राप्ति का मारग कहैं हरि सो सुनौ ॥
से इन्द्रियां मन रोकके प्राणौं कौ मस्तक मैं चढ़ा ॥९॥
१३ धारणा युत ओम् अक्षर ब्रह्म उच्चारण करै ॥
तक मुझ कौ सुमिरै अन्त विरियां सो परम गति पायेगा ॥१०॥

१४—भाव राख अन्यन सुमिरै मोंहि जो नित प्रेमसे ॥
ऐसे योगी नित्य युक्त कौ मैं सुलभ हूं सर्वदा ॥११॥

१५—मुझ कौ पाये फिर न पावै जन्म जो दुख मूल है ॥
१६ ब्रह्म लोक लौं जन्म चक्र मिटै न मम सुमिरन विना ॥१२॥

१७—सहस युग ब्रह्मा का दिन उतनी ही उनकी रात है ॥
१८ दिन मैं उपजै रैन विच्च अव्यक्त मैं लय सृष्टि का ॥१३॥

१९—वहि प्राणी अज के दिन मैं उपज रैन मैं होत लीन ॥
२० माया से पर भाव नित्य है अजर अमर जो है सदा ॥१४॥

२१—परम गति मम धाम अक्षय जहां जाय न लौटते ॥

२२ परपुरुषसो अनन्य भक्तिसे मिलै सब मैं जो बसरहा ॥१५॥
२३–उत्तरायण सूर्य मैं मरे योगी ब्रह्म को पावते ॥
२४व२५ दक्षिणायन पथ गये तैं बहुर जन्म है पावना ॥१६॥
२६–शुक्ल कृष्ण गती ये दोनों ज्ञान कर्म से जानिये ॥
२७ शुक्ल मुक्तिको देत कृष्ण गती से जगत मैं आवना ॥१७॥
२८–योगी जानत दोहु गतियातैं वो मोह मैं ना फँसै ॥
कहै श्रीमथुरेश योगी परम पद अस पावता ॥१८॥

॥ आठवां अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

अर्जुन ने सात प्रश्न किये उन प्रत्येक का उत्तर इस प्रकार भगवान ने दिया ॥ १ ॥ ब्रह्म नाम है नहीं क्षर होने वाले अर्थात अविनाशी का जो परम है ॥ २ ॥ अध्यात्म स्वभाव (अपना पन) को कहते हैं ॥ ३ ॥ सृष्टि की रचना कर्म कहलाती है ॥ ४ ॥ अधिभूत विनाशी का नाम है ॥ ५ ॥ अधिदैव नाम पुरुष (जीव) का है ॥ ६ ॥ अधियज्ञ सब का पूज्य (देहों मैं अन्तरयामी) मैं परमात्मा हूं ॥ ७ ॥ मरने के समय जो मेरा स्मरण करता है वो अवश्य मुझे प्राप्त होता है ॥

अब श्रीभगवान् फरमाते हैं कि अन्त समय मैं जिस का स्मरण मनुष्य करता है उसी को पाता है। इस कारण से उचित ये है कि अपने २ धर्म के अनुसार संसार का कार्य भी करो और मेरा स्मरण भी मन और बुद्धि के साथ बराबर करते रहो। योग अभ्यास के द्वारा चित्त ठहर कर अचल होजाता है ऐसे स्थिर चित्त से मेरा भजन ध्यानकरने से अवश्य मुझे प्राप्त होजायगा। दिव्य परपुरुष सब जानने वाला और सब को शिक्षा देने

वाला अनादि और सब का आधार, नहीं चिन्तवन में आसके ऐसे रूप वाला, ज्ञान रूप से सब का प्रकाशक सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म ऐसा जो मैं परमात्मा हूं उस मैं भक्ति और अभ्यास के द्वारा चित्त को दृढ लगाये रख। योग क्रिया से प्राण वायु को दोनों भोओं के मध्य के स्थान मैं धारण करके जो शरीर का त्याग करैगा वो ऊपर कहे हुए पर पुरुष को अवश्य पावैगा। परम पद की प्राप्ति का मार्ग यह है कि इन्द्रियों और मन को रोककर प्राण वायु को मस्तक मैं चढावे और योग धारण के साथ ओम् यह शब्द जो अक्षर ब्रह्म रूप है इसका उच्चारण करे और मेरा स्मरण करै इस रीति से अन्त समय जो देह छोडैगा वो अवश्य मुझ को प्राप्त होगा। अनन्य भाव से जो नित्य मेरा स्मरण प्रेम पूर्वक करे ऐसे योगी को मैं सदा ही सुलभ हूं। और मुझ को प्राप्त होकर फिर जन्म मरण के चक्र मैं नहीं आवेगा बंधन से छूटने का उपाय मेरे स्मरण बिना और नहीं है। सहस्र युग का ब्रह्मा का दिन और हजार ही युगों की ब्रह्मा की रात होती है सृष्टि ब्रह्मा के दिन मैं उत्पन्न होकर रातको अव्यक्त माया मैं लय होजाती है इसी प्रकार जीवों का जन्म मरण जारी रहता है। परन्तु मेरा धाम अक्षय है उसको जो प्राप्त होगया वोह फिर उलटा नहीं आता। पर पुरुष जो सब मैं वास कर रहा है वो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होता है। उत्तराण सूर्य के मार्ग से योगी लोग जाकर फिर जन्म नहीं लेते दक्षिणाय मार्ग से गये हुए मनुष्य फिर जन्म लेते हैं। शुक्ल गति ज्ञान से और कृष्ण गति कर्म से मिलती हैं। शुक्ल गति वाले मुक्त होजाते हैं और कृष्ण गति वाले कर्म कांडियों को जन्म लेना पडता है। योगी लोग इन दोनों गतियों को जानते हैं इस लिये मोह मैं नहीं फँसते और परमपद को प्राप्त होते हैं॥

इति अक्षर ब्रह्म योगो नाम अष्टमो अध्यायः॥ ८ ॥

॥ नौवाँ अध्याय ॥

इन्द्र सभा की गजल (यन्से यां को खुदा के लिये लाया मुझ को)
की तरज मैं गाना

१—नौवें अध्याय मैं भगवान ये फरमाते हैं ॥
गुप्त अति श्रेष्ठ जो विद्या है सो बतलाते हैं ॥१॥
२—गुप्त है कर्म सुनौ ताहु से अति गुप्त है ज्ञान ॥
गुप्त तम भक्ति सो विज्ञान सहित गाते हैं ॥२॥
३—जिस कौ इस धर्म मैं विश्वास नहीं सो नर मूढ ॥
मुझ कौ पाते नहि संसार मैं फिर आते हैं ॥३॥
४—मुझहि अव्यक्त से यह व्याप्त है सारा संसार ॥
मेरे आधार हि सब भूत नज़र आते हैं ॥४॥
५—मैं नहीं उनमें रहूं वे नहि मोंमे इस्थित ॥
ईश्वर ताइ से मेरी सवि पल जाते हैं ॥५॥
६—सबका आधार हूं लेकिन न किसी का संगी ॥
ज्यों पवन सब जगह आकाश मैं दरसाते हैं ॥६॥
७—भूत रचना करूं कल्पादि मैं निज प्रकृती से ॥
८ फिर वो कल्पान्त मैं प्रकृती में समाजाते हैं ॥७
९—सारी सृष्टी कौ रचूं होके मैं निस्काम असंग ॥
कर्म यूं मेरे कौ बंधन मैं नहीं लाते हैं ॥८॥

१०–मेरे आधीन वो सृष्टी कौ है रचती प्रकृती ॥
मुझ से इस हेतु जगत् सारे हि प्रघटाते हैं ॥९॥
११–ईश मैं सब का हूं इस भाव कौ जानें नाहि मूढ ॥
मुझ कौ नर मान निरादर मेरा करवाते है ॥१०॥
१२–आस अरु कर्म हैं निस्फल है विफल ज्ञान उनका ॥
आसुरी माया के आधीन लुभा जाते हैं ॥११॥
१३–जिन महा पुर्षों की होती है वो दैवी प्रकृती ॥
एक मुझ मैं हि लगा मन कौ सदा ध्याते हैं ॥१२॥
१४–कीर्तन मेरा करैं यत्न करैं दृढ रह कर ॥
भक्ति से मुझ कौ नवैं मुझ मैं सदा राते हैं ॥१३॥
१५–एकता भाव से ज्ञानी कोई भजते मुझ कौ ॥
न्यारे भावों से कोई सब मैं कोई ध्याते हैं ॥१४॥
१६–याग अरु यज्ञ हूं मैं अन्न हूं सामग्री हूं ॥
मंत्र हुत अग्नि भी मैं हूं हरी फरमाते हैं ॥१५॥
१७–सबका मैं माता पिता धाता हूं ओंकार मैं हूं ॥
वेद हूं साम, यजुः, ऋग्, जो कहे जाते हैं ॥१६॥
१८–कर्म फल और पतिः स्वामी हूं मैं साक्षी हूं ॥
हूं निवास और शरण उनका जो अपनाते हैं ॥१७॥
,, जन्म अरु नाश हूं स्थान हूं सब जीवों का ॥
बीज अविनाशि हूं मैं सबकौ जो उपजाते हैं ॥१८॥

१९—तपुं वर्षुं गहुं अरु छोडुं मैं हि अमृत हूं ॥
मैं हि हूं मौत असत् सत् हमी कहलाते हैं ॥१९॥
२०—यज्ञ कर स्वर्ग का सुख भोगते हैं वैदिकभी ॥
२१ भोगकर पुन्य वो संसार मैं आजाते हैं ॥२०॥
२२—चिंतवन मेरा करैं जो कि सदां होके अनन्य ॥
उन का रक्षक हूं मैं सब कुछ मुझिसे पाते हैं ॥२१॥
२३—और देवों कौ जो पूजैं हैं मनुज श्रद्धा सै ॥
मेरे पूजक वो भी विधि हीन गिने जाते हैं ॥२२॥
२४—सारे यज्ञो का मैं ही भोक्ता अरु स्वामी हूं ॥
यह नहीं जान्ते सो तत्व से गिर जाते हैं ॥२३॥
२५—पूजैं देवों कौ या पित्रों कौ यांजो भूतों कौ ॥
वो उन्हें पावैं मेरे भक्त मुझै पाते हैं ॥२४॥
२६—पत्र फल फूल सलिल मुझ कौ जो दे भक्ती से ॥
प्रेम सै खाता हूं प्रेमी ही मुझे भाते हैं ॥२५॥
२७—कुछ करै खाय हवन दान तू जो तप भी करै ॥
कर निवेदन मुझै इस भांतहि जन पाते है ॥२६॥
२८—शुभ अशुभ कर्म के बन्धन से तू छुटकर मुझकौ ॥
पावैगा हम तुझै सन्यास ये बतलाते है ॥२७॥
२९—प्राणी सब तुल्य हैं मुझ कौ किसी से वैर न प्यार ॥
पर वो मुझ मैं हैं मैं उन मैं जो मुझै ध्याते है ॥२८॥

३०—कैसा भी भारी दुराचारी भजै मुझ कौ अनन्य ॥
साधुही मान उन्हैं मुझ मैं जो नित राते हैं ॥२९॥
३१—जल्द धर्मात्मा हो शान्ति वो पावैगा अवश्य ॥
कर प्रतिज्ञा मेरे जन नाश नहीं पाते हैं ॥३०॥
३२—आसार लेके मेरा पापि भी मुक्ती पावैं ॥
नारि या वैश्य तथा शूद्र जो कहलाते हैं ॥३१॥
३३—विप्र राजर्षियों भक्तों का तौ कहना ही क्या ॥
मुझकौ भज, जो नहि भजते वोहि पछताते है ॥३२॥
३४—मन लगा मुझ मैं मेरा भक्त मुझै नम्र हो पूज ॥
मुझ कौ पावैगा युं मथुरेश ये फ़रमाते हैं ॥३३॥

॥ नौवीं अध्याय का सार बातों मैं ॥

इस अध्याय मैं श्रीभगवान कृपाकर अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या का उपदेश करैं हैं। पहिले कर्म योग कहा जो गुप्तथा फिर उससे भी गुप्ततर ज्ञान उपदेश किया अब उससे भी अधिक गुप्ततम जो विज्ञान सहित भक्ति योग है सो कहते हैं। जिन लोगों को इस मैं भरोसा नहीं है वे मूर्ख हैं और मुझ को प्राप्त न होकर जन्म मरण के चक्र मैं पडजाते हैं। मुझी अव्यक्त रूप मै सब संसार व्याप्त होरहा है और सब का आधार भी मैं ही हूं। मैं उन मैं नहीं न वे मुझ मैं स्थित हैं अर्थात अनन्त और अखंड हूं इस लिये अंतवाले भूत प्राणियों मैं समा नहीं सकता और वे नाशमान् और खंड २ होने से मेरे मैं स्थित (क़ायम) नहीं रहसकते केवल मेरी इश्वरता से सारे ठैरे हुए हैं। जैसे पवन आकाश मैं व्यापक है इसी प्रकार मेरे मैं सब जगत है परन्तु मैं

आकाश की तरह असंग हूं। कल्प के आरंभ में प्राणी मेरी प्रकृती के द्वारा प्रगट होकर कल्प के समाप्त होने पर उसी मेरी प्रकृति में लीन होजाते हैं। अपनी प्रकृति के द्वारा मैं ही सब जगत् को रचता हूं परंतु असंग रहता हूं इस कारण मे कर्म के बन्धन में नहीं फँसता हूं। प्रकृति मेरे आधीन होकर जगत् को रचती है इस सबब से सृष्टि का रचने वाला मैं समझा जाता हूं। मैं सबका स्वामी ईश्वर हूं इस मेरे प्रभाव को न जानकर लोग मुझे मनुष्य समझलेते हैं इस से मेरा निरादर होता है। उन लोगों की आशा और कर्म और ज्ञान सब निस्फल है मेरी आसुरी माया उन को भ्रम मे डाल देती है। और दैवीप्रकृति वाले महापुरुष मुझ एक में ही मन को लगा कर मुझे भजते हैं दृढताई के साथ वे लोग मेरा ही कीर्तन करते और प्रेम के साथ मेरी ही वंदना करके मुझी में ध्यान लगाये रहते हैं। कोई ज्ञानी पुरुष मुझे एकता के भाव से भजते कोई न्यारे २ भावोंसे और कोई सब में व्याप्त एना मान्ते हैं। याग और यज्ञ मेरा ही रूप है यज्ञ में जो होमाजाता है वो पदार्थ और अग्नि और सब सामग्री यज्ञकी मैं ही हूं। सब का मांबाप और पालन करने वाला मैं ही हूं। ओंकार मेरा ही रूप है और तीनों वेद भी मैं ही हूं। मैं ही कर्मों का फल और सब का स्वामी हूं कर्मों का साक्षी और सब का आधार सब का हितू और शरण मैं हूं। मैं ही सब की उत्पत्ति और स्थिति और नाश का करने वाला और सारे जगत् का वीज रूप हूं। मैं ही तपने और बरसने वाला ग्रहण और त्याग करने वाला हूं। मैं हीअमृत (मोक्ष रूप) और सबकी मौत जिन्दगी और सत् और असत् सबकुछ मैं ही हूं। जो लोग वेद विधि से यज्ञ करते हैं वे स्वर्ग में जाकर सुख भोगते और पुन्य के वीत जाने पर मृत्यु लोक में जन्म पाते हैं। और जो लोग अनन्य भावसे मेरा चिन्तवन करते हुए सदा मेरी भक्ति करते हैं उनको सब कुछ मैं देता हूं और रक्षा करता हूं। मेरेसिवाय और देवताओं को जो पूजते हैं वो पूजा भी मुझीको पहुंचती है परन्तु वोह पूजा विधि हीन है। सब यज्ञा-

द्रियों का भोक्ता मैं ही हूं ऐसा जो नही जान्ते वे तत्व से गिरजाते हैं ॥ जो लोग देवों कौ पूजते वे देवों कौ प्राप्त होते और पित्रों के पूजक पितरों कौ भूतों के पूजक भूतों कौ और मेरे भक्त मुझ परमात्मा कौ प्राप्त होते हैं पत्र फूल फल जल जो कुछ भी भक्ति से मेरे अर्पण किया जावै उसै मैं बडी प्रीतिसे ग्रहण करलेता हूं ॥ जो कुछ करै खाय हवन करै दान करै या तप करै सब मेरे अर्पण कर ॥ इस प्रकार करने से शुभ और अशुभ दोनों कर्म के बन्धन मैं नही पडैगा यही सन्यास योग है इसके द्वारा मुझ कौ ही प्राप्त होगा ॥ यद्यपि मुझे किसी से वैर नही न प्यार है तौ भी जो प्रेमी मुझको भजते हैं वे मेरे मैं और मैं उन मैं रमरहा हूं यदि कोई कैसाहि बडा भारी दुराचारी भी है और अनन्य भाव से मेरे भजन ध्यान मैं लगाहुआ है तो उसको साधु ही मान्ना चाहिये वो बहुत जल्द धर्मात्मा होकर शान्ति कौ पावैगा अर्जुन तू इस बातको पक्की जानकर प्रतिज्ञा करले कि मेरे भक्त का नाश कभी नहि होता ॥ जो नीच कुल मैं जन्मे हुए अथवा स्त्री और वैश्य या शूद्र भी हैं वे भी मेरी शरन होजाने से परमगति कौ पाजाते हैं ॥ तो फिर पवित्र ब्राह्मण और भक्त राजऋषि क्षत्रयों के तरजानेमें तो संदेह ही क्या है ॥ इसलिये हे अर्जुन तू मुझकौ भज ॥ मेरे मैं मन लगा मेरा ही भक्त हो मुझे ही पूज और नमस्कार कर एसा करने से निश्चय तू मुझी कौ प्राप्त होगा ॥

इति राजविद्या राजगुह्य योगो नाम नौवीं अध्यायः ॥ ९ ॥

॥ दशवाँ अध्याय ॥

(कव्वाली चाल)

१—अध्याय दसवीं आई फिर बोले जादो राई ॥
सुन पार्थ मन लगाई हित इस मैं भर रहा है ॥ १ ॥

२—मेरा प्रभाव सुरगण नहि जानैं, ना ऋषीगण ॥
उनसब का जन्म मुझ से इस सृष्टि मैं हुआ है ॥ २ ॥
३—सब लोकों का महेश्वर मैं अज हूं अरु अनादी ॥
ऐसा जो जाने वो नर पापों से छूटता है ॥ ३ ॥
४—जो बुद्धि ज्ञान स्मृती अरु क्षमा सत्य संजम ॥
५ सुख दुःख आदि बहु विध मुझ ही से आतता है ॥ ४ ॥
६—ऋषि सात अरू मनू चार मेरे हि मन से उपजे ॥
सन्तान उन की सारी लोकों की प्रजा है ॥ ५ ॥
७—मम योग अरु विभूती जाने अचल हो योगी ॥
८ मुझे मान सबका कारण पंडित उपासता है ॥ ६ ॥
९—रख चित्त प्राण मुझ मैं समझावैं समझैं मिलके ॥
करके कथन मगन हो मन मेरे मैं रमा है ॥ ७ ॥
१०—नित प्रेमी निज जनों को देता हुं मैं सुबुद्धी ॥
जिस से मिलैं मुझे, अरु उनके न मुझ सिवा है ॥ ८ ॥
११—करके कृपा मैं, उनका अज्ञान तम निवारूं ॥
उर ज्ञान दीप उनके जल्दी प्रकाशता है ॥ ९ ॥
१२—अर्जुन कहै प्रभू तुम परब्रह्म हो सनातन ॥
पर धाम दिव्य अजभी विभु रूप आपका है ॥१०॥
१३—सबही ऋषी बखानैं देवर्षि नारदादिक ॥
निज रूप अपना ऐसा ही आपने कहा है ॥११॥

१४—सुर अरु असुर न जानैं तुमकौ ये बात सच है ॥
१५ तुमने स्वयं प्रभूजी जाना निजआत्मा है ॥१२॥
१६—व१७व१८ | कहिये विभूति अपनी विस्तार से दया कर ॥
किस किस मैं जगके माहिं तवरूप भासता है ॥१३॥
१९—हरि बोले निज विभूती संछेप से सुनाऊं ॥
नहि अंत, उसका संभव विस्तार तौ बडा है ॥१४॥
२०—हृदयों मैं प्राणियों के हूं आत्मा मैं सब का ॥
नहि आदि अन्त मध्यं उनका मेरे सिवा है ॥१५॥
२१—आदित्यों मैं हूं विष्णू प्रकाशकों मैं रवि हूं ॥
पवनों मैं हूं मरीची तारों मैं चंद्रमा है ॥१६॥
२२—वेदों मैं साम देवोंमैं है इन्द्र रूप मेरा ॥
सब इन्द्रियों मैं मन अरु भूतों मैं चेतना है ॥१७॥
२३—रुद्रों मैं हूं मैं शंकर यक्षों मैं हूं कुवेर ॥
वसुओं मैं अग्नि, मेरू शैलों मैं जो बडा है ॥१८॥
२४—जानौ पुरोहितों मैं मुझ कौ बृहस्पती तुम ॥
सेनानियों मैं षट मुख सागर भी तन मेरा है ॥१९॥
२५—भृगु हूं महर्षियों मैं बाणी मैं ओं अक्षर ॥
यज्ञों मैं जप मेरा तन थावर हिमालया है ॥२०॥
२६—वृक्षों मैं हूं मैं पीपल देवर्षियों मैं नारद ॥
गन्धर्व चित्ररथ अरु मुनि कपिल जो हुआ है ॥२१॥

२७—उच्चश्रवा हूं घोडा हाथी मैं हूं ऐरावत ॥
राजा है रूप मेरा जो नरौं कौ पालता है ॥२२॥
२८—शस्त्रों मैं वज्र हूं मैं गायों मैं कामधेनू ॥
हूं काम सृष्टि कर्ता तन वासुकी मेरा है ॥२३॥
२९—नागों मैं हूं अनन्ता जल देवों मैं वरुण हूं ॥
पित्रों मैं अर्यमा अरु यम हूं जो दंडता है ॥२४॥
३०—दैत्यों मैं हूं मैं प्रहलाद गणकों मैं काल हूं मैं ॥
सिंह अरु गरुड हूं मैं जो पशु पक्षि मैं बडा है ॥२५॥
३१—वायू हूं शोधकों मैं हूं राम शस्त्रियों मैं ॥
जल जीवों मैं मगर हूं नदियों मैं जो गंगा है ॥२६॥
३२—सृष्टी का आदि मध्य अरु अन्त हूं मैं अर्जुन ॥
अध्यात्म हूं मैं विद्या अरु वाद वक्तृता है ॥२७॥
३३—मैं अकार अक्षरों मैं हुं समास द्वन्द नामी ॥
मम रूप काल अक्षय धाता भी सर्व का है ॥२८॥
३४—हूं जन्म मृत्यु मैं ही तिरियों मैं कीर्ति, श्री, वाक ॥
मम रूप स्मृति मेधा धृती तथा क्षमा है ॥२९॥
३५—सामों मैं हूं वृहत्साम गायत्री छंदों मैं हूं ॥
मासों मैं नाम मँगसर ये बसन्त ऋतु मेरा है ॥३०॥
३६—छलियों मैं हूं जुआ मैं तेजस्वीयों मैं हूं तेज ॥
मम रूप जीत उद्यम अरु सत्व सर्व का है ॥३१॥

–३७ हूं वासुदेव यादव अरु पांडवों मैं अर्जुन ॥
मुनियों मैं व्यास उशना कवियों मैं जो कहा है ॥३२॥
३८–हूं दंड नीति मैं ही अरु मौन ज्ञान भी मैं ॥
हौं बीज प्राणियों का नहि कुछ मेरे विना है ॥३३॥
३९ से ४२ तक –है अनन्त मम विभूती संक्षेप से वखानी ॥
हर वस्तु मैं चमत्कार जो कुछकि है मेरा है ॥३४॥
इक अंश से मैं अपने हूं सब जगत मैं व्यापक ॥
यहि तत्व सब कथा का मथुरेश ने कहा है ॥३५॥

॥ दसवीं अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

श्रीभगवान आज्ञा करते हैं कि देवता और ऋषि लोग मेरे प्रभाव कौ नहीं जानसकते इस लिये कि उनका जन्म मुझ से ही हुआ है । मैं सब लोकों का महेश्वर अजन्मा और अनादि हूं इस बात का जान्नेवाला पापों से छूट जाता है । बुद्धि, ज्ञान, स्मृति, क्षमा, सत्य, संजम, दुख, सुख, सब मुझ मे ही प्राप्त होता है । सनकादिक और सप्त ऋषि और चारों मनु मेरे मन मे उत्पन्न हुए उन्हीं की सन्तान यह जगत की सारी प्रजा है । मेरे योग और विभूति कौ जान्नेवाला अचल योगी है । मुझे सबका कारण मानकर पण्डित ज्ञानी उपासना करते हैं । मेरे मैं चित्त और प्राणों कौ लगाकर आपस मैं मेरे हि स्वरूप और प्रभाव कौ समझावै और समझै और मेरी चरचा और गुणानुवाद करके मन को मुझ मैं लगाये रहैं ऐसे प्रेमी निज भक्तों कौ मैं सुबुद्धि देता हूं उनको मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है वो मुझ कौ हि प्राप्त होजाते हैं । मैं उन पर कृपा करके उनका अज्ञान दूर कर देता हूं जिस से

ज्ञान रूपी दीपक उन के हृदय में जल्द ही प्रकाश करने लगता है ॥

अर्जुन कहता है कि प्रभु आप पूरण परब्रह्म परधाम सनातन और दिव्य रूप अजन्मा और व्यापक हो ऐसा सब ऋषिभी कहते हैं और स्वयं आपने भी कहा है । इस में कोई संदेह नहीं कि आप को सुर असुर नहीं जानसकते आप ही अपने स्वरूप को जानते हैं सो हे नाथ आप अपनी दिव्य विभूति मुझे विस्तार से सुनाइये कि जगत में आप का रूप किस किस में भासमान होरहा है ॥

भगवान फरमाते हैं कि मेरी विभूति का अन्त नहीं है तौभी संक्षेप से तुझे सुनाता हूं । सब प्राणियों के हृदय में आत्मा मैं ही हूं उनका आदि अन्त और मध्य भी मैं ही हूं । बारह आदित्यों में विष्णु नाम वाला और प्रकाश करने वाले तारागण आदिकों में सूर्य मैं हूं । पवनों में मरीची नाम वाला और तारों में चन्द्रमा मेरा ही रूप है । वेदों में साम-वेद, देवताओं में इन्द्र, सब इन्द्रियों में मन, और भूत प्राणियों में चेतना मैं ही हूं ! ११ रुद्रों में शंकर, यक्षों में कुबेर, वसुओं में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्वामकार्तिक, सरोवरों में सागर, ऋषियों में भृगु, वाणी में ओंकार, यज्ञों में जप यज्ञ, स्थावरों में हिमालय पर्वत, वृक्षों में पीपल, देवऋषियों में नारद, गंधर्वों मे चित्ररथ, मुनियों में कपिलदेव, घोड़ों में उच्चश्रवा, हाथियों में ऐरावत, और मनुष्यों में राजा मेरा ही रूप है । शस्त्रों में वज्र, गायों में कामधेनु, और सृष्टि कर्ता कामदेव मैं ही हूं और सर्पों में वासुकि मेरा रूप है ॥

नागों में अनन्त, और जलदेवताओंमें वरुण पितरों में अर्यमा, दंड देने वालोंमें यमराज, दैत्योंमें प्रहलाद गणनाकरने वालों में काल मैं हूं ॥ बनके पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड, सोधन करने वालों में वायु, शस्त्रधारियों में राम, जल जीओं में मगरमच्छ, नदियोंमें गंगा, मेराही रूप है, सृष्टी का आ-

दि मध्य और अंत मैं ही हूं, विद्याओं में अध्यात्म विद्या और बोलने वालों में वाद मेरा रूप जानो। अक्षरों में अकार समासों में द्वंद । और अक्षय काल तथा सबका धाता मैं ही हूं। सब का जन्म और मृत्यु मैं हूं स्त्रीयोंमें कीर्ति और लक्ष्मी (शोभा) और वाणी मेरा रूप समझो और स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा यह भी मेरा ही रूप है । सामों में बृहत साम, छन्दों में गायत्री, महीनों में मँगसर (अगहन) ऋतुओं में वसंत मैं हूं । छल करने वालों में जुवा, तेजस्वीयों में तेज और जय, उद्यम, और सत्व का सत्व मैं ही हूं । यदुवंशियों में वासुदेव, पांडवों में अर्जुन, मुनियों में व्यासजी, कवियों में उशना नामी, दंडनीती और मोन और ज्ञान, प्राणियों में जीव मैं ही हूं, मेरे बिना कुछ नहीं है । हरएक वस्तु में जो कुछ चमत कार दिखाईपडे उसे मेरा रूप जानो, मैं एक अंशसे सब जगत में व्यापक हूं। यह विभूति अपनी संक्षेपसे मैने सुनाई है ॥

इति विभूति योगो नाम दसवां अध्यायः ॥

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

(ख्वाजा लीजै खबरिया हमारी रे) इसके वज़न पर गाना ।

गीता गाओ मिलैंगे सुरागी रे ॥ गीता० ॥

१—अध्याय ग्यारहवाँ का सुनाऊं ये हाल है ।

अर्जुन ने श्रीहरी से किया यूं सवाल है ॥

उपदेश हित भरा ये तुम्हारा दयाल है ।

मिला ज्ञान का रहस्य मिटा मोह जाल है ॥

बडी भारीजी महिमा तुम्हारीरे ॥ गीता गाओ० ॥ १ ॥

२—फ़रमाया आपने वोही लोहेकी लीक है ।
सृजो व मारो भूतों को ये बात ठीक है ॥
अब दास मांगता उसी दर्शन की भीक है ।
ऐश्वर्य युक्त रूप जो अद्भुत अलीक है ॥
लखने लायक हूं क्या मैं बिहारी रे ॥ गीता० ॥ २ ॥

(श्लो० ३ से ४ तक)

५—हरि बोले देखो रूप मेरे बेशुमार हैं ।
उन मैं तरह तरह के रंग अरु आकार हैं ॥
आदित्य आदि देवों के हमही आधार हैं ।
अचरज अपूर्व दृश्य यहां लख अपार हैं ॥
मेरी काया मैं सृष्टी है सारी रे ॥ गीता गा० ॥ ३ ॥

(श्लो० ५ से ७ तक)

८—इस अपनी आंखसे न मिलै तुझको देखना ।
मैं दिव्य नेत्र देता हूं दर्शन तू इन से पा ॥
९ ये कहके श्रीहरी ने दरस रूप का दिया ।
निज रूप ऐश्वर्य भरा जिस मैं था महा ॥
ऐसी झांकी कभी ना निहारी रे ॥ गीता गा० ॥ ४ ॥

१०—मुख और आंखैं जिस मैं थीं अद्भुत रहीं लखात ।
भूषित वो दिव्य शस्त्र उठाये अधिक सुहात ॥
११ धार वो दिव्य माला वस्त्र गंध लिप्त गात ।
अचरंज भरा प्रकाशै नहीं अंत है दिखात ॥

जिसके मुख सब तरफ़ मैं हैं जारी रे ॥ गीतागा० ॥ ५ ॥

१२–सूरज हज़ार हों उदय जो आसमान मैं ।
उस के समान तेज है देखा उस आन मैं ॥

१३–इकठां निहारा सारा जगत गुण निधान मैं ।
नाना प्रकार दीख पडे हरि के थान मैं ॥
भयो मन मैं अचम्बो भारी रे ॥ गीता गाओ० ॥ ६ ॥

१४–रोमांचित हो हाथ जोड बोला सरझुका ।
हूं देह मैं तुम्हारे मैं देवों को लखरहा ॥

१५–सब प्राणियों को ब्रह्मा महादेव को लखा ।
ऋषियों को दिव्य नागों को भी हूं मैं तकरहा ॥
अधिकाइ प्रभुताई तिहारी रे ॥ गीता गाओ० ॥ ७ ॥

१६–अनगिन्ती हैं जो बांह उदर नैन मुख तेरे ।
तुम को अनंत देखुं मैं हूं सब दिसा घेरे ॥
नहि आदि मध्य अन्त को पाऊं कहीं तेरे ।
है विश्वरूप आप का ये सामने मेरे ॥
तूही विश्वों का ईश्वर बिहारी रे ॥ गीता गा० ॥ ८ ॥

१७–हैं आप कीट चक्र गदा धारी भासते ।
हर ओर तेज पुंजहो स्वामी प्रकासते ॥
देखा न जासकै है चहूं ओर दास तैं ।
ज्यों अग्नि और सूरज पूरण चकासते ॥

महिमा चिन्तन से बाहिर तुम्हारी रे ॥ गीता० ॥ १ ॥

१८—अक्षर परम हौ आप जगत के परम निधान ।
अविनाशि नित्य धर्म के रक्षक पुरुष प्रमाण ॥
व नहि आदि मध्य अन्त है अतिही हौ वीर्यवान ।
१९ शशि सूर्य नेत्र वाले हौ मुख अग्नि के समान ॥
तपी जाती है दुनिया ये सारी रे ॥ गीता गा० ॥१०॥

२०—आकाश सब दिसाओं मैं तुम हौ रहे समाय ।
यह उग्ररूप देख त्रिलोकी रही डराय ॥

२१—सुरगण तुम्ही मैं लीन कोई त्रस्त हा हा खांय ।
स्वस्ती बचन महर्षि सिद्ध बोलरहे धाय ॥
करैं अस्तुत तिहारी वो भारीरे ॥ गीता गा० ॥११॥

२२—रुद्रादि देव यक्ष भी गन्धर्व सिद्ध जो ।
अचरज भरे हैं सारे लखैं देवता अहो ॥

२३—बहु नेत्र मुख उदर का तेरे देख रूप कौ ।
दाढैं कराल देख के भय भीत मैं भयो ॥
सारे लोकों को है भय कारी रे ॥ गीता गाओ० ॥१२॥

२४—आकाश लौं प्रदीप्त तथा नाना रंग का ।
फैलाये मुख विशाल नेत्र प्रज्वलित महा ॥
इस रूप कौ निहार मेरा मन दुखी हुआ ।
भगवान मेरे चित्त मैं धीरज नहीं रहा ॥

यानै मन की है शान्ति बिगारी रे ॥ गीता गा० ॥१३॥

२५—विकराल दाढौं वाले काल अग्नि के समान ।
तेरे मुखौं कौ देख दिशा दीनी है भुलान ॥
से—सब धार्तराष्ट्र राजों सहित भीष्म आदि मान ।
जोधौं सहित हमारी तरफ़ के भी पहलवान ॥
इनकी अद्भुत है हालत निहारी रे ॥ गीता गा०॥१४॥

२८—ये सब मुखौं मैं तेरे हैं जल्दी से जारहे ।
विकराल दाढ दातों मैं लटके दिखारहे ॥
तक मस्तक सभौं के पिसगये हैं दुख ये पारहे ।
नदियौं की न्याईं सिंधु उदर मैं समारहे ॥
भारी अग्नी मुखौंमें पजारी रे ॥ गीता गाओ०॥१५॥

२९—पडते हैं ज्यौं पतंगे दीपक में वेगसे ।
ब त्यौं लोक सब तुम्हारे मुखौं में हैं पडरहे ॥
३०—तुम खारहे हौ सब कौ चहूं ओर चाव से ।
भरपूर तेरे तेज से तपता जगत हरे ॥
भारी आभा है जग बिस्तारी रे ॥ गीता गा० ॥१६॥

३१—तुम उग्र रूप कौन हौ लीजे मेरा प्रणाम ।
प्रवृत्ति आप की नहीं ये जान्ता गुलाम ॥
देवौं में श्रेष्ठ मेरे पै खुश हो बताओ श्याम ।
अर्जुन कौ तब हरी ने सुनाया वचन ललाम ॥

कहैं श्री मुखसे यूं गिरधारी रे ॥ गीता गा० ॥१७॥

३२—लोकों के नाश हेतु मैं हूं काल बर्धमान ।
से | तेरे बिना ये वीर सभी दे चुके हैं प्रान ॥
३४—उठ शत्रुओं कै जीत के जस ले हो सावधान ।
तक | अब राज्य सुख कौ भोग मरे शत्रुओं कौ जान ॥
जयका कारन तू बन धनु धारी रे ॥ गीता गा० ॥१८॥

३५—सुन हरिके बचन पार्थ नै करजोड़ सरझुका ।
कम्पाय मान भय से गद गद होय यूं कहा ॥
३६—अस्तुति तुम्हारी करते नाथ जग मगन हुआ ।
डर भागे राक्षस, करैं सब सिद्ध बन्दना ॥
तोरी महिमा बडी अघहारी रे ॥ गीता गा० ॥१९॥

३७—अजके भी आदि कर्ता तुम्ही हौ जगत निवास ।
देवों के ईश अरु अनन्त, है न जिसका नास ॥
३८—हैं सत् असत् से आप परे आदिदेव खास ।
तुमही पुराण पुरुष हौ जगनिधि परम प्रकास ॥
ज्ञेय ज्ञाता तुही सृष्टि कारी रे ॥ गीता गाओ० ॥२०॥

३९—तुम वायु यम हौ अग्नि वरुण चन्द्रमा भी हो ।
पर दादा तुम्हि ब्रह्मा भी तुम कौ नमो नमो ॥
४०—सब ओर आगे पीछे से मेरा प्रणाम लो ।
तुम अमित वीर्य विक्रम हौ प्राप्त सभी को ॥

तूही सब कुछ है विश्वा धारी रे ॥ गीता गा० ॥२१॥

४१–महिमा तेरी न जान जो बरताव मैं किया ।
हे कृष्ण सखा यादव तव नाम यूं लिया ॥

४२–व्यवहार मैं तुम्हारा निरादर भी कर दिया ।
सो सब छमा कराने कौ चाहै मेरा हिया ॥
दीजै माफ़ी हुई गुनहगारी रे ॥ गीता गा० ॥२२॥

४३–तुम सब के पिता पुज्य गुरू हौ दया निधान ।
महिमा अपार कोई नहीं आप के समान ॥

४४–करूं दंडवत प्रसन्न होउ मुझ कौ दीन जान ।
ज्यों पुत्र मित्र नारि कौ बख्शैं सुजन जहान ॥
ऐसे बख़्शो जी चूकैं हमारी रे ॥ गीता गा० ॥२३॥

४६–खुश तौ हुआ मैं देख के झांकी हजूरकी ।
व्याकुल है बहुत भय से पर नाथ मेरा जी ॥
से झांकी चतुर्भुजी मेरे सन्मुख जो पहले थी ।
करके दया दिखाइये मुझ कौ वोही हरी ॥
बोले तब यूं प्रभू गिरधारी रे ॥ गीता गा० ॥२४॥

४८–खुश होके तुझकौ रूप है अपना दिखा दिया ।
यह विश्व रूप तेज भरा है अगम मेरा ॥
तक कोई किसी साधन से इसे पा नहीं सकता ।
अब तक न लख सका कोई इसको तेरे सिवा ॥

हुई तुझपै ये कृपा अपारी रे ॥ गीता गा० ॥२५॥

४०—कर दूर खौफ दिलसे तसल्ली हिये मैं धार ।
पहला जो रूप मेरा था वोही तू ले निहार ॥
से यूं कह हरीने रूप चतुर्भुज लिया सुधार ।
५१ नरतन हरी का देख खुशी पाई वेशुमार ॥
तक बोला अर्जुन हुआ मैं सुखारी रे ॥ गीता गा० ॥२६॥

५२—भगवान् बोले तूने मुझे देखा जैसी तौर ।
तप दान आदि करके भी कब लखसकै है और ॥
से केवल अनन्य भक्ति से पाऊं मैं सारी ठौर ।
तूने मेरी कृपा से लखा रूप यह निहोर ॥
मुझे भक्ती ही है अति प्यारी रे ॥ गीता गा० ॥२७॥
५५ जो मेरे अर्थ कर्म करै मेरे आसरे ।
मुझ कौ हि भजे संग तजे सबसे हित करै ॥
तक मुझ कौ अवश्य पावै वोही कष्ट से टरै ।
मथुरेश भक्ति वश है ये निश्चै हिये धरै ॥
सोही पावन है धन संसारी रे ॥ गीता गाओ० ॥२८॥

॥ ग्यारहीं अध्याय का सार बार्ता मैं ॥

अर्जुन प्रश्न करता है कि महाराज आपने कृपा करके जो उपदेश दिया

वो बडा हित का भराहुआ है मुझे उससे ज्ञान प्राप्त होगया आप ही सृष्टि के उत्पन्न और नाश करने वाले हैं महिमा आप की अपार है। अब मैं आप के ऐश्वर्य वाले रूप का दर्शन चाहता हूं सो यदि मैं उसके देखने के योग्य होऊं तो दिखला दीजिये॥

श्रीभगवान् उत्तर देते हैं कि मेरे रूप असंख्य हैं और उन मैं तरह २ के रंग और सूरतैं हैं। आदित्य से आदि लेकर सब का आधार मैं ही हूं। मेरी काया मैं सारी सृष्टि भरी हुई है और बडे २ अचरज उस मैं दिखाई देंगे। इतना कहकर भगवान बोले कि तू मेरे विराट रूप को इन नेत्रों से नहीं देखसकैगा इस कारण तुझे दिव्य दृष्टि देता हूं। पश्चात् श्रीभगवान् ने अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाया। जिस मैं अनेक मुख और नेत्र अद्भुत दिखाई देने लगे। भूषण और दिव्य शस्त्र धारण किये हुए दिव्य माला और वस्त्रों से शोभित चन्दन से चर्चित गात्र दीख पडा। अचरज से भरा हुआ ऐसा कि जिस का अन्त ही नजर नही आवै, और चारौ तरफ को जिस के मुख हैं। हजार सूरज एक दम से उदय हों इतना प्रकाश वाला, हरि के शरीर मैं एक जगह सारे जगत नाना प्रकार के देखने लगा॥

तब रोमांचित शरीर होकर अर्जुन हाथ जोडकर प्रणाम करके बोला कि हे भगवन् आप की देह मैं सारे देवताओं को मैं देख रहा हूं ब्रह्मा और शंकर और सब ऋषि गणों और नागों तथा सब प्राणियों को देखकर आप की प्रभुताई भारी दिखाई दे रही है हे देव आप के असंख्य बांहैं, उदर, नेत्र, और मुख मैं देख रहा हूं मुझे आप का आदि और मध्य और अन्त कुछ नहीं दीखता सब दिशायें आप से घिरी हुई हैं यह विश्व रूप आप का मेरे सामने है आप सारे विश्वों के स्वामी हैं। आप कीट, गदा, और चक्र, धारण किये हुए हैं हर तरफ आप का रूप तेजोमय भास रहा है अब दास इस को देख नहीं सकता आप की महिमा चिन्तवन मैं नहीं आसकती। आप परम अक्षर और जगत् के परम निधान, अविनाशी, नित्य,

धर्म के रक्षक, परम पुरुष, अनादि, अनन्त, और पराक्रमी हौ चंद्र और सूरज नेत्र हैं आप के और मुख अग्नी के समान है जिस से सारा संसार तप रहा है। आप आकाश और सब दिशाओं मैं समा रहे हौ इस रूप कौ देखकर तीनों लोक डर से कांप रहे हैं। देवता लोग आप मैं लीन होरहे हैं कोई डरकर प्रार्थना कर रहे हैं ऋषि लोग स्वस्ति वचन बोल रहे हैं। रुद्र आदिक देव, यक्ष, गंधर्व, सिद्ध, सब आप कौ अचंबे से देखैं हैं। हे महाराज आप के इस भयानक रूप कौ देखकर मैं अत्यन्त भय भीत होरहा हूं और और सब लोक डर रहे हैं। आकाश तक प्रज्वलित नाना रंग वाले, फैले हुए आप के मुख और बडे २ नेत्रों को देखकर मेरे मन में धीरज नहीं रहा। काल अग्नि के समान भयानक दाढौं वाले आप के मुख कौ देख मैं व्याकुल होगया हूं। भीष्मजी से आदि लेकर दुर्योधन और उसके पक्ष के सारे जोधा और मेरी तरफ के भी बहुत से वीर जोधा आप की दाढौं मैं लटके हुए और पिसते हुए दिखाई दे रहे हैं। जैसे दीपक मैं पतंगे जा जा कर जलते हैं ऐसे सारे लोक आप के मुख की ज्वाला मैं प्रवेश कर रहे हैं आप उन कौ भक्षण रक रहे हैं। हे देवों के देव आप कौ मेरा प्रणाम पहुंचे आप कौन हैं सो कृपा करके बतलाईये मैं आप की प्रवृत्ति कौ नहीं जान्ता हूं॥

श्रीभगवान् बोले कि मैं लोकों के नाश करने कौ काल रूप हूं तेरे विना यह सब जोधा काल वश होकर नष्ट हो रहे हैं तू क्यों विचार कर रहा है उठकर युद्ध कर यह तौ सब मरचुके हैं नाम मात्र तू जय प्राप्त करके राज्य सुख और जस का लाभ ले ले॥

यह वचन सुनकर अर्जुन भय भीत हुआ प्रणाम करके बोला कि महाराज आप ब्रह्माजी के भी आदिकर्ता, अनन्त, और अविनाशी, जगत के आधार हौ। सत और असत से परे पुराण पुरुष परम प्रकाश आप ही हैं ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय आप ही हैं। आप हि अग्नि, वायु, वरुण, आदिदेव रूप, सब के पर दादा हौ आप कौ सब तरफ से मेरा नमस्कार है। मैं ने

आप को अपना मित्र जानकर जो बरताव आप के साथ किया उनकी माफी चाहूं हूं। आप परम पूज्य गुरू हो आप की महिमा कौन जान सकता है दीन दास जानकर मेरा प्रणाम लीजिये और जैसे पुत्र की चूक पिता और नारी की उसका पति माफ करै तैसे आप मुझे क्षमा दीजिये। हे नाथ आप का यह विश्व रूप देखकर मैं प्रसन्न हुआ परन्तु अब भयके मारे यह रूप आप का देखने को मैं समर्थ नहीं हूं मुझे तो आपका चतुरभुजी रूप जो पहले था वोही कृपा करके दिखाईये ॥

तब भगवान बोले कि मैंने तुझपर अति हि प्रसन्न होकर यह अपना विश्व रूप दिखाया है इस को आजतक दूसरा नहीं देख पाया अब तू मेरा पहिले वाला रूप देख ॥ इतना कहकर भगवान ने अपना चतुरभुज रूप कर के दर्शन दिया और उसे देख अर्जुन प्रसन्न हुआ ॥

श्रीभगवान बोले तप, दान, आदि साधनों करके भी कोई इस मेरे रूप को नहीं देख सकता है केवल अनन्य भक्तिसे ही मैं प्राप्त होता हूं भक्ति ही मुझे अत्यन्त प्यारी है जो मेरे निमित्त ही कर्म करै मेरा ही आसरा भरोसा रक्खै संग तज के मुझे ही भजै और सब प्राणियों से हित और प्रेमकरै वो मुझे अवश्य प्राप्त होता और दुखों से छूटजाता है वो मनुष्य संसार मैं धन्य और मान्य है ॥ इति विश्वरूप दर्शन येगो नाम ग्यारहीं अध्यायः ॥ ११ ॥

॥ बारहीं अध्याय ॥

राग विहाग (नाथ कैसे गज को फंद छुडायो) इसके वज़नपर गाना

कृष्णप्यारोहमरेमनअतिभायोजानैप्रेमप्रभावजनायो ॥कृ०

अब अध्याय बारहीं मैं पुनि अर्जुन प्रश्न उठायो ॥

ताके उत्तर मैं करुणा निधि भक्तिभेद दरसायो ॥कृ०॥१॥

१–अर्जुन पूंछी कोई भक्तजन तुमहि भजत मगनायो ॥
निराकार कौं भजते कोऊ भेद नही मैं पायो ॥कृ०॥२॥
२–हरि बोले जिण अति श्रद्धा से नित्य मोहि कौं ध्यायो॥
मोमैं मनराखे मोहि प्रेमी अतिहि श्रेष्ठ लखायो ॥कृ०॥३॥
३–निराकर कूटस्थ अचल जो सारे जगमैं छायो ॥
४–ताहि भजैं समदृष्टि संजमी तिण हूं मोकौं पायो॥कृ०॥४॥
५–क्लेश सहैं जिण निराकार मैं अपनो चित्त लगायो ॥
गति अव्यक्त मिलै अति दुखसे यातैं कठिन बतायो॥कृ०॥५
६–सकल कर्म मोमैं अर्पणकरि जो मम आश्रय आयो॥
भावअनन्य राख मेरे मैं मोहि मैं ध्यान लगायो ॥कृ०॥६॥
७–ताहि उबारूं भवसागर से सदा रहूं उमगायो ॥
जन्ममरण सै छुटैबेगही अस प्रण तोहि सुनायो ॥कृ०॥७॥
८–मन अरु बुद्धि धार मोही मैं बसि है मम नियरायो ॥
९ चित्त न धार सकै मोमैं तौ कर अभ्यास उपायो ॥कृ०॥८॥
१०–यदि अभ्यास नही बन आवै कर्म करौ मम भायो ॥
ममप्रसन्नता हेतुकर्मकिये सिद्धिमिलै सुखछायो ॥कृ०॥९॥
११–यदि याहू मैं शक्ति न तेरी योग करत अकुलायो ॥
सबकर्मनके फलकों तजियेचित्तहि राख दृढायो ॥कृ०॥१०॥
१२–ज्ञान श्रेष्ट अभ्यास तैं ध्यानहि ज्ञानतैं श्रेष्ठ बतायो ॥
यातैंअधिककर्मफलतजिबोतबपद शान्तसुहायो॥कृ०॥११॥

१३—वैर रहित सबही सों मैत्री करुणा हृदय धराओ ॥
नाहिं अहंता ममता जाके सुख दुख समठैरायो ॥कृ०॥१३॥
१४—सन्तोषी संजमी नित्य रत दृढ़ निश्चय उर लायो ॥
मम अर्पितमनबुद्धिकरैसो भक्तमोहिंअतिभायो ॥कृ०॥१३॥
१५—निर्भय आप लोक हू जातैं तनकहु नाहिं डरायो ॥
हरष ईर्षा क्षोभ रहित सो भक्त मोहि अतिभायो ॥कृ०॥१४॥
१६—इच्छा रहित पवित्र चतुर निर्पक्ष सदा मगनायो ॥
कर्मनको आरंभ तजै सो प्रिय मम भक्त कहायो ॥कृ०॥१५॥
१७—राग द्वेष सब सोच वासना इनहिं निपट बिसरायो ॥
पुन्यपापसे रहित भक्तजन सोमोकों अतिभायो ॥कृ०॥१६॥
१८—शत्रु मित्र अरु मान निरादर तुल्य मान हरषायो ॥
शीतउष्णसुखदुखसममानैविषयनमैंनलुभायो॥कृ०॥१७॥
१९—निन्दा अस्तुति तुल्य गिनै सन्तोषी मौन धरायो ॥
घरनहिंबांधै थिरमति सो जनमेरे मनकोंभायो ॥कृ०॥१८॥
२०—अमृत रूपि भक्त को लक्षन यूं मथुरेश सुनायो ॥
इनकों पालै है शरणागत सोहरि प्रियइमगायो ॥कृ०॥१९॥

॥ बारहीं अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

अर्जुन ने प्रश्न किया कि महाराज कोई भक्तजन तौ आपकी उपासना करते हैं और कोई निराकार ब्रह्म के उपासक हैं इसका भेद मैं नहीं जान्ता कि इन मैं कौन श्रेष्ट है ॥

तब भगवान् आज्ञा करते हैं कि जो लोग अत्यंत श्रद्धा (विश्वास) से नित्य मेरा ध्यान करैं और मन को मेरे मैं लगाये रहैं हैं वे प्रेमी भक्त मेरे मत मैं श्रेष्ट हैं। और जो सर्व व्यापक निराकार के उपासक हैं वे भी मुझी को प्राप्त होय हैं परन्तु निराकार के उपासकों को बडा भारी कष्ट सहना पडै है और वोः मार्ग अति कठिन है। जिसनै सारे कर्म मुझ मैं अर्पण कर के मेरा ही आसरा लिया है और मेरे ध्यान मैं अनन्य भाव से लगे रहते हैं उनको भवसागर से मैं पार कर देता हूं फिर वे जन्म और मरण के फंद से छूट जाते हैं यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं। इस लिये मेरे मैं मन और बुद्धि को लगाओ इस से मुझको जल्दी से प्राप्त होगा। यदि तू मुझ मैं चित्त नही लगा सकै तौ चित्त के ठैराने के लिये अभ्यास कर। यदि अभ्यास भी तुझ से न बनपडे तौ मुझे जो कर्म प्यारे लगते हैं वोः कर्म कर। यदि तू ऐसा करने मैं भी समर्थ नही है तो सब कर्मों के लफ की इच्छा को तजदे और दिल को मजबूत रख। अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञान से ध्यान बडा है उस से भी बडा दरजा और सहज उपाय कर्मों के फल का त्याग करदेना है। जो मनुष्य किसी से वैर भाव न रख कर सब पर दया भाव रखता और अहंता ममता नही रख के सुख दुख को समान जानता है ऐसा संतोषी संजमी पुरुष मुझ मैं नित्य आसक्ति रखने वाला दृढ निश्चय रखने वाला और मन और बुद्धि को मेरे अर्पण कर देने वाला भक्त मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। जिसको किसी जीव से भय न हो और उस से कोई जीव उद्वेग को प्राप्त न हो और हर्ष ईर्षा और क्षोभ रहित हो सो भक्त मुझे प्यारा है। जो मनुष्य किसी बात की कामना न रखता हो पवित्र और चतुर और पक्ष-पात रहित हो और कर्मों के आरंभ को त्याग ने वाला है वो मेरा प्यारा है विषयों में राग (प्रीति)और द्वेष (वैर भाव) और चिन्ता कामना को तजने वाला भक्त पुन्य पाप से छूट जाता है वोही मेरा प्यारा है। जो शत्रु, मित्र, मान, अपमान, को एक

सा समझता होय और सरदी गरमी सुख दुख कौं बराबर मानकर विषयों मैं मन कौं न फँसावै और निन्दा स्तुति कौं बराबर समझै और सन्तोषी हो। मौन धारण करने वाला घर बांध कर न बैठने वाला ऐसा थिर बुद्धि मनुष्य मुझ कौं प्रिय लगता है। ऐसे लक्षण भक्त मैं होने चाहियें॥ श्रीभगवान् ने अमृत रूपी वाणी से फरमाये हैं इन का पालन करने वाला हरि शरणागत जन भगवान् कौं अत्यन्त प्यारा है॥

इति भक्ति योगो नाम १२ अध्यायः॥

॥ तेरह्वां अध्याय ॥

(निहारौ चल के बरसाने मैं प्यारी संग प्यारा है) इस तर्ज पर गाना

सुनौजी तेरह्वीं अध्याय ज्ञान इसमैं जो आया है ।
शरीर अरु आत्मा का भेद श्रीहरिने बताया है ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम कर्म अध्याय छय, अन्त कि छय मैं ज्ञान ।
बीचकी षट अध्याय मैं, भक्ति धरी भगवान ॥
उजेरा देहरी दीपक का ज्यों दोउ दिस मैं छाया है ॥सु०॥१॥
हरि अर्पै बिन कर्म सब बन्धन के हैं मूल ।
ज्ञानहु हरि की भक्ति बिन होत हिये को सूल ॥
फटकमे धान भूसी से कभी कुछ हाथ आया है ॥सु०॥२॥

१ क्षेत्र नाम या देह को कह्यो सो लीजे जान ।
यह जानै क्षेत्रज्ञ सो जीव आत्म पहचान ॥
२ मेराही अंश तौ क्षेत्रज्ञ सब क्षेत्रों मैं छाया है ॥ ३ ॥
३ दोहा—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को, ज्ञान है अभिमत मोर ।
सुनहु कहूं उन दोउ को, लक्षण है जिस तौर ॥
४ इसे ऋषियों तथा बेदों नै बहुधा करके गाया है ॥ ४ ॥
५ „ महाभूत पांचौ अहंकार बुद्धि अव्यक्त ।
दस इन्द्रिय इक मन तथा, पांच विषय जो व्यक्त ॥
६ वोइच्छा द्वेष सुख दुख भोगजो जीवों ने पाया है ॥ ५ ॥
„ इन सबको समुदाय अरु, धीर्ज चेतना जोहि ।
लच्छन क्षेत्र विकारिको, अर्जुन कह्यो मैं तोहि ॥
ये कहकर ज्ञानके साधनजो हैं तिनकौ वताया है ॥ ६ ॥
७ „ मान दंभ हिंसा रहित, क्षमा साधुता जोय ।
गुरु सेवा शुचिता तथा, थिरता संजम होय ॥
८ विषयका त्याग अरु मनसे अहंता कौ हटाया है ॥७॥
„ जन्म मरण रोगादि दुख, पुनि २ तासु बिचार ।
९ लिप्त न मन कौं करसकैं, पुत्र दार घर बार ॥
सदा अपने पराये मैं जो समता भाव लाया है ॥ ८ ॥
१० „ रति अनन्यता भावसे अचल होय मो मांहि ।
रुची रहै एकान्त मैं जन समूह मैं नाहि ॥

११ सदा अध्यात्म ज्ञान अरु तत्वफलमें मन लगाया है ॥ ९ ॥
,, लक्षण येही ज्ञान के, ता विरुद्ध अज्ञान ।
ज्ञेय कहूं जेहि ज्ञान तैं, मिलै मोक्ष निर्वान ॥
१२ अनादी और मम आधीन जो सबमें समाया है ॥१०॥
१३ ,, कह्यो जाय नहि सत् असत्, हाथ पांव सब ओर ।
नेत्र सीस मुख कान तैं, जो व्यापै सब ठौर ॥
१४ प्रकाशक इन्द्रियों के सब गुणोंका जो बताया है ॥११॥
,, गो गण रहित अलिप्त हूं, सबको धारण हार ।
निर्गुण अरु गुण भोक्ता, बाहिर भीतर सार ॥
१५ चरा चर वोह किसीके जान्ने में भी न आया है ॥१२॥
,, वोहि दूर वोही निकट, भागरहित सब मांहि ।
देख्यो पडै विभक्त सो, भर्ता कहैं भी ताहि ॥
१६ वोही भक्षण तथा वृद्धीका कारण भी कहाया है॥१३॥
,, परे जान अज्ञान से, जोतिन की हू जोत ।
१७ ज्ञानहु सोही ज्ञेय हू, प्राप्त ज्ञान से होत ॥
हिये में सारे जीवों के उसी ने बास पाया है ॥१४॥
१८ ,, क्षेत्र कह्यो पुनि ज्ञान अरु, ज्ञेय बतायो तोय ।
याहि जानके भक्तमम, प्राप्ति योग्य मम होय ॥
अनादी पुरुष अरु प्रकृती हैं आगे यह सुनाया है ॥१५॥
१९ ,, सब विकार अरु गुण भये, प्रकृती से यह जान ।

कारज कारण कर्तृना, हेतू प्रकृती मान ॥
२० पुरुष है हेतु सुख दुख भोगने में यूं जताया है ॥१६॥
२१ „ प्रकृति गुणनको भोगता, पुरुष प्रकृति विच छाय ।
विषय वासना संगले, ना ना योनि में जाय ॥
ये कारण भोक्ता पनका पुरुष के मांहि गाया है ॥१७॥
२२ „ संमतिदाता, साक्षी, धारणपालनहार ।
सो महेश परमात्मा, कहिये देह मंझार ॥
प्रकृती से परे पर पुरुष यूंहीं तौ कहाया है ॥१८॥
२३ „ प्रकृती पुरुष विवेक तैं, बंध मुक्त नर होय ।
२४ लखैं आत्मा ध्यान सै, सांख्य योग से कोय ॥
२५ किसीने कर्म योगहु से किसीने सुन के पाया है ॥१९॥
„ आत्म ज्ञान हो काहु विधि, छूट जाय संसार ।
२६ प्रकृति पुरुष संयोग तैं सारी सृष्टि बिचार ॥
इसी संजोग से सारा चराचर लोक जाया है ॥२०॥
२७ „ परमेश्वर जीवन विषे रह्यो बिराज समान ।
नश्वर देहन मैं रह्यो अविनाशी भगवान ॥
जो देखै ऐसी दृष्टी सै उसी कौ वोः लखाया है ॥२१॥
२८ „ सब देहन में जो लखै ईश्वर कौ सम रूप ।
परम गती पावै मनुज पडै नहीं भव कूप ॥
अकर्ता आत्मा सब कृत्य प्रकृती नै रचाया है ॥२२॥

३० ,, सब जीवन के भेद कौ जब देखे इक मांहि ।
एकहि तैं बिस्तार सब ब्रह्म प्राप्त हो जांहि ॥
ये आतम ज्ञान का मारग बहुत उत्तम बताया है ॥२३॥
३१ ,, है अनादि निर्गुण यही परम आत्मा नित्य ।
देह मांहि इस्थित बहुर रहै अलिप्त अकृत्य ॥
३२ यथा आकाश निर्लेपी यदपि सब मैं समाया है ॥२४॥
३३ ,, एक सूर्य ज्यौं करै सब लोकन मांहि प्रकास ॥
३४ क्षेत्री जीव सब देह मैं तैसेही रह्यो भास ॥
कहै मथुरेश यूं जाना परम पद उसने पाया है ॥२५॥

॥ तेरहवां अध्याय का सार वार्ता मैं ॥

गीताजी की पहली ६ अध्यायों मैं कर्म योग प्रधान करके वर्णन किया और अन्त की ६ अध्याय मैं ज्ञान योग, बीच की ६ मैं भक्ति योग निरूपण किया इसका कारण यह है कि विना भगवान कौ अर्पण किये कर्म बंधन का मूल है और ज्ञानभी भक्ति विना निस्फल है इस लिये बीच मैं भक्ति रक्खी जैसे देहली पर दीपक अंदर बाहिर दोनो तरफ उजेला करै है वैसे ही कर्म और ज्ञान दोनों की सफलता भक्ति मे है सो १२ अध्याय तक बर्णन करके अब १३ वें अध्याय मैं ज्ञान का निरूपण करै हैं इस १३ वीं अध्याय मैं भगवान देह और जीवात्मा का भेद और स्वरूप बतावैं हैं ॥ क्षेत्र (खेत) इस शरीर का नाम है और जो इस क्षेत्र का जान्ने वाला चेतन्य है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं । सारे क्षेत्रों (शरीरों) मैं जो क्षेत्रज्ञ (जीव) है वो मुझी कौ जान अर्थात् मेरा ही अंश जीवात्मा है अब पहले क्षेत्र का लक्षण

कहै हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यह पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, दस इन्द्रियें, मन, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच इन्द्रियों के विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात (देह) चेतना धृतिः (धीरज) यह सब क्षेत्र कहा जाय है जो विकार वाला है । अब ज्ञान के साधनों को कहते हैं। मान रहित होना, दम्भ (पाखंड) रहित होना हिंसा न करना, क्षमा और साधुपना, गुरु सेवा, पवित्रता, थिरता, संजम (इन्द्रियों) का रोकना विषय का त्याग, अहन्ता का मन से हटाना, जन्म मरण रोग आदि दुखों का बारम्बार विचार, पुत्र स्त्री घर बार में मनका लिप्त न होना, अपने पराये में एक सार भाव, अनन्यता भाव से मुझ परमेश्वर में प्रीति का होना, एकान्त में रुचि का होना, अध्यात्म ज्ञान और तत्व विचार में मन का लगाना, इतने ऊपर कहे लक्षण ज्ञान के हैं और इन से विरुद्ध जो है सो अज्ञान है । अब ज्ञेय पदार्थ (जानने योग्य) को कहैं हैं। अनादि, मेरे आधीन, ब्रह्म, सत् और असत् दोनों शब्दों से जो न कहाजावै, सब जगह जिसके हाथ पांव हैं अनेक नेत्र सीस मुख कानों वाला सब जगह व्यापक, इन्द्रियों के सब गुणों का प्रकाश करने वाला, इन्द्रियों से रहित, निर्लिप्त, सब का धारण कर्ता, निर्गुण और गुणों का भोक्ता, बाहिर भीतर सब का सार, चर और अचर किसी के भी ज्ञान का विषय नहीं । वोही दूर, वोही निकट, भाग रहित होने पर भी विभक्त जैसा दीखपडै, सब का भर्तार, भक्षण और वृद्धि का भी कारण, अज्ञान से परे सब ज्योतियों का प्रकाशक, ज्ञान और ज्ञेय भी वोही और ज्ञान से प्राप्त होने वाला, सब के हृदयों में निवास करने वाला ऐसा है । क्षेत्र और ज्ञान और ज्ञेय यह तीनों वर्णन किये इन के जानने से मेरा भक्त मुझे प्राप्त होने योग्य होता है। आगे पुरुष और प्रकृति को कहैं हैं। यह दोनों अनादि हैं । सारे विकार और गुण प्रकृति से ही होवैं हैं कार्य कारण और कर्ता पना भी प्रकृति ही से है और सुख दुख के भोगने में पुरुष कारण है। प्रकृति के गुणों को

भोगता हुआ पुरुष प्रकृति मैं समाया हुआ है सो विषय वासना के संग से नाना योनियों मैं जावै है यही कारण पुरुष के भोक्ता पने मैं है । संमति देने वाला साक्षी धारण और पालन करने वाला महेश परमात्मा देह मैं विराजै है । वोह प्रकृति से परे होने के कारण पर पुरुष कहा जाय है । इस प्रकृति पुरुष के विवेक से बंधन कटता है । आत्मा को ध्यान से साक्षात करते हैं कोई सांख्य रीति से, कोई कर्म योग से, और कोई श्रवण से ही प्राप्त करैं हैं । किसी प्रकार से भी आत्मा का ज्ञान हो जाय तो संसार से मुक्ति हो जाती है । प्रकृति और पुरुष के संजोग से सारी सृष्टि होय है परमात्मा सब जीवों मैं समान रूप से विराज रहा है वो अविनाशी है और देह नाशवान है ऐसा देखने वालों को वो प्रत्यक्ष नज़र आवै है जो मनुष्य सब देहों मैं ईश्वर को समान रूप से देखे वो परमगति को पाता है । वास्तव मैं सारा कृत्य प्रकृति का है आत्मा अकर्ता है । जब सब जीवों के भेद को एक परमात्मा मैं देखै तब ब्रह्म को प्राप्त होय है । वोह अनादि और गुणों से रहित परमात्मा सब देहों मैं रह कर आप अकर्ता और अलिप्त है जैसे आकाश सारी ठौर रहने पर भी न कुछ करै न लिप्त होवै और जैसे एक सूर्य सब को प्रकाश कर्ता हुआ भी स्वयं निर्लिप्त है वैसे ही क्षेत्री जीवात्मा सब क्षेत्रों (देहों) मैं प्रकाश करता हुआ आप असंग है ऐसा अपरोक्ष ज्ञान होने से परमपद प्राप्त होता है ॥

प्रकृतिपुरुष निर्देश योगो नाम त्रयोदश अध्यायः ॥ १३ ॥

॥ चौदहीं अध्याय ॥

॥ राग काफ़ी (होली) की तर्ज़ ॥

श्रीगीता रस नीको, लाभ याभैं है सब ही को ॥

१—अब अध्याय चौदहीं मैं यह सुन उपदेश हरी को ।
ज्ञाननमैं अतिउत्तमहै सोइ पावन सिद्धमुनीको । ला०॥१॥

२—कहत हरी या ज्ञान सै पावै मेरी तुल्य गती कौ ॥
सृष्टिमैं जन्ममरणहु प्रलयमैंहोय नवाप्राणीको । ला०॥२॥

३—महद ब्रह्म जानौ मम योनी अपरा ता प्रकृती को ॥
गर्भ देऊं मैं वाभैं सोही हेतु है उत्पत्ती को । ला०॥३॥

४—सब देहन की जननी प्रकृती पिता जान मोही कों ॥
५ सतरजतमगुणबन्धनजानौ सकलदेहधारीको । ला०॥४॥

६—निर्मलता से ज्ञान को दाता सतगुण शान्त है नीको ॥
सुख अरु ज्ञान संगतैं सोहू बन्धन है या जीको । ला०॥५॥

७—विषयन मैं प्रीती पुनि तृष्णा कारण आसक्ती को ॥
सोहि रजोगुण कर्म संगतैं बन्धन है प्राणी को । ला०॥६॥

८—ले अज्ञान सै जन्म तमोगुण मोहत देहधनी कौ ॥
आलसनीद प्रमादकेद्वारा बन्धन आतम हीको । ला०॥७॥

९—सुख मैं सत्व लगावै कर्म मैं रजगुण तन स्वामीको ॥
ज्ञानकौ ढांक प्रमादमैं प्रेरै तमहै मूल हानीको । ला०॥८॥

१०—दोय कौ दाब तीसरो गुण अस हेतु होय प्रवृती कौ ॥
११ देह मैं ज्ञान बढै तब जानौ उदय सत्व वृत्तीको । ला०॥९॥
लोभ प्रवृत्ति कर्म मैं उद्यम चाह अभाव धृतीको ॥
१२—बढै रजोगुण तब यह उपजैं देह मांहि देही को । ला०॥१०॥
१३—होय अज्ञान, स्वभाव मैं जडता, भूल, मोह, प्राणी को ॥
बढ्योजानियतबहितमोगुणकृत्यहैसबप्रकृतीको । ला० ११॥
१४—सत्व बढै तन तजै सो पावै उत्तम लोक गती को ॥
१५ रजगुण वृद्धि समै नर पावै जन्म कर्म संगीको । ला०॥१२॥
मरै तमोगुण मैं सो पावै नीच मूढ योनी कौ ॥
उत्तमअधमगतीको कारण गुणही देहधारीको । ला०॥१३॥
१६—शुभ कर्मन को फलहै सतोगुण सुखदायक प्राणीको ॥
रजफलदुखअज्ञानहैतमकोगुणफलहोत सभीको । ला॥१४॥
१७—ज्ञान सत्वको लोभहै रजको मोहादिक तमहीको ॥
कारजहैं यह तीनो गुणके यही कृत्य देहीको । ला० ॥१५॥
१८—सत्व वान ऊंची गति पावै राजस मध्य गतीको ॥
तमोगुणीनीचीगतिपावैअसविचारकरणीको । ला०॥१६॥
१९—गुणन विना नहि औरहै कर्ता धारै याहि मतीकौं ॥
गुणन तैं परे पुरुषकौ जानै सो पावत मोहीकौं । ला.॥१७॥
२०—देह जन्य इन तीन गुणन कौ लांघ लखै देहीकौ ॥
जन्मजराअरु मरण दुःखसै छूटलहै मुक्तीकौ । ला.॥१८॥

२१—गुणातीत के कौन चिन्ह हैं पूंछत पार्थ हरी कौ ॥
चलनफिरनअरुगुणनकौ लंघनोकैसेवर्तैनोको। ला०॥१९॥
२२—गुणातीत लक्षन उपाय अब सुन उपदेश हरी को ॥
गुण धर्मों से द्वेष न करकै चहै न ता निवृत्ती कौ। ला०॥२०॥
२३—रहै तटस्थ गुणनतैं मनमैं नहि पावै विकृती कौ ॥
२४ समसुखदुखसमलोहकनकमानैतुल्यानिंदाअस्तुतीकौ॥२१॥
२५—मान निरादर तुल्य गिनै सम मानै मित्र बैरी कौ ॥
गुणातीतसोहीजनकहियेत्यागस्वभावउसीको। ला०॥२२॥
२६—जो मोय सबैं हिये सें धारैं दृढ अनन्य भक्ती कौं ॥
वेहि उलंघन करैंगुणनकौ ब्रह्मरूप तिनही को ॥ला० ॥२३॥
२७—ब्रह्म मोक्ष अरु धर्म सनातन परमानंद रती को ॥
कहैं मधुरेश आश्रय मैं हूं सारहै येही श्रुतीको॥ ला० ॥२४॥

॥ चौदहीं अध्याय का सार बार्ता में ॥

श्रीभगवान् आज्ञा करैं हैं कि अब मैं वोह उपदेश करूं हूं जो सब ज्ञानों मैं उत्तम और सिद्ध मुनीश्वरों को भी पवित्र करने वाला है और जिस ज्ञान से मनुष्य मेरे समान होजाता है और जन्म मरण से छूट जाता है। महद्ब्रह्म जो अपरा प्रकृति है सो मेरी योनि (प्राणियों का जन्म स्थान) है उस मैं गर्भ रखने वाला मैं हूं। इसी मे सब की उत्पत्ति है। सब देहों की माता प्रकृति और पिता मुझ कौं जानों। सत्व, रज, तम, यह तीन गुण जो प्रकृति के हैं यह ही सब जीवों को बन्धन मैं डालने वाले हैं। इन मैं

सत्व गुण निर्मल पने से सब को ज्ञान देने वाला शान्त है परन्तु सुख और ज्ञान के संग का कारण होने से यह भी जीव का बन्धन कर्ता ही है। विषयों में प्रीति और तृष्णा उत्पन्न करने वाला आसक्ति का कारण रजो गुण है सो जीवात्मा को कर्मों में लगाने वाला बन्धन का हेतु है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होकर जीवात्मा को मोहित करदेता है आलस्य नींद और प्रमाद के द्वारा यह भी बन्धन का कारण है। सत्व गुण जीव को सुख में लगाता है रजोगुण कर्मों में और तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में लगा देता है यह अत्यन्त हानि कारक है। तीनों गुणों में से एक प्रबल होकर दो को दबा देता है तब उसी के अनुकूल जीव की प्रवृत्ति होजाती है जब शरीर में ज्ञान बढा हुआ दिखाई देवे तब सत्वगुण उदय हुआ ऐसा जानो और जब लोभ उपजै कर्मों में उद्यम को चित्त चाहै कामना उत्पन्न होय औरजःनही रहै तब जानो कि रजोगुण बढाहुआ है। और जब अज्ञान और जड़ता और भूल मोह आलस्य आदिक देह में प्रतीत होवैं तब तमोगु-ण का उदय जानो। मरने के वक्त यदि सत्वगुण बढा हुआ होय तो उत्तम गति मिलै रजोगुण बढा होय तो जन्म चक्र में फंसै है। और तमोगुण की वृद्धि उस समय पाई जावे तो नीच और मूढयोनि में जन्म मिलता है। यह तीन गुण ही उत्तम और अधम गति के कारण हैं। शुभ कर्मों का फल सतोगुण सुखदाई है और अशुभ कर्मों से तमोगुण उत्पन्न होकर अज्ञान और दुखदाई होता है रजोगुण शुभ अशुभ दोनों का फल कर्मों में प्रेरणा करै है-इस हेतु रजोगुण का कार्य दुख और तमोगुण का कार्य अज्ञान है सत्वगुण से ज्ञान रजोगुण से लोभ और तमोगुण से मोह आदिक उपजैं हैं। इनमें सत्व उत्तमगति का देने वाला रज मध्य का और तम नीची गति को प्राप्त करै है। इन तीन गुणों के बिना और कोई कर्ता नही है और पुरुष इन से परे है ऐसा जिसको दृढनिश्चय होजावे वो मुझको ही प्राप्त होजाय है। इन तीन गुणों का उलंघन करके जो जीवात्मा को देखें अर्थात्

साक्षात् करै वो जन्म मरण और जराआदि दुखों से छूट कर मुक्त होजाता है ॥

अर्जुन प्रश्न करै है कि इन गुणोंका उलंघन करने वाला (गुणातीत) मनुष्य क्योंकर और कैसे लक्षण वाला होय है सो आज्ञा कीजिये ।

श्रीभगवान् फ़रमाते हैं कि गुणों के धर्म जो बरतें उन से बचने की भी कोशिश न करै और तटस्थ रहकर उन मे मनको विकारी न होनेदे सुख दुख को समान गिनै सुवर्ण और लोहे को इकसार समझे निन्दा मे अप्रसन्न और स्तुति से प्रसन्न न होकर मान और निरादर को समान माने शत्रु मित्र को बराबर जानै ऐसा मनुष्य गुणातीत कहलाता है उसी को त्यागी कहना चाहिये । और जो मुझ सर्व रूप परमात्मा को हिये में धारण करके मुझ में दृढ़ अनन्य भाव रखता है सोही गुणों को उलंघन करता है और गुणातीत होकर ब्रह्मरूप होजाता है । ब्रह्म मोक्ष और सनातन धर्म तथा परमानंद की रीति इन सब का आधार मैं ही हूं येही वेदों का सार है ॥

इति गुणत्रय विभाग योगो नाम चतुर्दश अध्यायः ॥ १४ ॥

॥ पंद्रहवां अध्याय ॥

(कंथ बिन कैसे जीवूं रे) इस तर्ज़ पर गाना ।

कृष्ण गुण कैसे गाऊं मैं, एक जीभ बलहीन ॥ कृष्ण० ॥
भक्ति मुक्ति दातार श्रीगीता रची दयाल ॥
पन्द्रहवीं अध्याय सुन मिटै सकल भ्रमजाल ॥ कृ० १॥
१—माया मय संसार है पीपल वृक्ष समान ॥
जड ऊपर शाखा तरे पत्र वेद सब जान ॥ कृ० २॥

२–नीची ऊंची डालियां दई गुणन फैलाय ॥
विषयहि कूंपल मूल नर लोक मांहि लटकाय ॥ कृ० ३ ॥
३–जान सक्रिय नहि रूप अरु आदि अन्त विस्तार ॥
विषय संग को त्याग दृढ याको छेदन हार ॥ कृ० ४ ॥
४–आद्य पुरुष ताके परे शरण जायवे योग ॥
सकल प्रवृत्ती वाहितैं मिटै ये संसृति रोग ॥ कृ० ५ ॥
५–मान मोह ममता रहित निस्कामी नित ज्ञान ॥
सम सुख दुख नर पावते सो मम पद निर्वान ॥ कृ० ६ ॥
६–रवि शशिकी नहि गति जहां पावक देत न काम ॥
जहां जाय उलटै नहीं मोड़ परम मम धाम ॥ कृ० ७ ॥
७–जीव बस्तु देहन विषै मेरो अंशहि जान ॥
लहैं वाहितैं कर्म फल इन्द्रिय मन अरु प्राण ॥ कृ० ८ ॥
८–जब शरीर धारै तजै जीव सूक्ष्म तनु संग ॥
लै धावै ज्यों पवन ले गन्ध सुमन तैं अंग ॥ कृ० ९ ॥
९–इन्द्रिन अरु मन संग सो भोगत बिषयन भोग ॥
ज्ञानी सब चेष्टा लखैं लखैं न मुरख लोग ॥ कृ० १० ॥
११–योगी मेरो ध्यान धर लखैं आत्म तन मांहि ॥
जतन करत हू विमुख जन मूढ सकैं लख नांहि ॥ कृ० ११ ॥
१२–सूर्य चंद्र अरु अगिन मैं तेज मेरो ही जान ॥
१३ भू प्रवेश कर देत बल भूतन कौ मैं मान ॥ कृ० १२ ॥

१४—रस निधि चंद्र मैं होय कै औषद पुष्ट कराउं ॥
देहन मैं जठराग्नि ह्वै अन्नहि मांहे पचाउं ॥ कु० १३॥
१५—हृदय बसूं सब मुझी से स्मृति ज्ञान अरु भूल ॥
वेदनकरि मोकों लखैं बेद वेदान्त को-मूल ॥ कु०१४॥
१६—क्षर अक्षर दो पुरुष हैं लोक मांहि विख्यात ॥
भूत हैं क्षर कूटस्थ पुन अक्षर नाम कहात ॥ कु०१५॥
१७—उत्तम पुरुष परमात्मा दोउन तैं है भिन्न ॥
जो समाय तिहुं लोक को भर्ता ईश अछिन्न ॥ कु० १६॥
१८—हूं न्यारो मैं क्षरहु से अक्षर तैं हु अतीत ॥
लोक बेद मैं प्रघट हूं पुर्षोत्तम या रीत ॥ कु०१७॥
१९—पुरुषोतम जो जानता मोकों सहित विचार ॥
मोहि भजै सब भावतैं सो सब जानन हार ॥ कु०१८॥
२०—अतिहि गुप्त यह शास्त्र है कह्यो हरी मधुरेश ॥
यह जानैं बुधजन वोही सो कृतकृत्य हमेश ॥ कु०१९॥

॥ पंद्रहवीं अध्याय का सार बार्ता में ॥

श्रीभगवान् फर्माते हैं कि यह माया मय संसार पीपल के वृक्ष के समान है जिस की जड़ (मूल) ऊपरकी तरफ़ और डाले नीचे को हैं । इस माया रूपी वृक्ष के पत्ते बेद हैं और गुण सत्व आदिक जो हैं उन्होंने इस की डालियां नीची ऊंची फ़ैला रक्खी हैं और विषय इस के कूंपल हैं और जड़ें इसकी मर्त्य लोक मैं लटकी हुई हैं । इस माया का रूप और आदि

अन्त जाना नही जा सकै है । इस माया वृक्ष के काटने का उपाय यह है कि विषयों के संग का त्याग दृढताई से किया जावै । इस से परे आद्यपुरुष जो है उस की शरण मैं जाना चाहिये उसी से सारी प्रवृत्ति है और उसी से संसार मैं जन्म और मरण का रोग मिट सकता है । मान, मोह, ममता इन से रहित निष्कामी मनुष्य जो आत्म ज्ञानी और सुख दुख कौ समान गिनने-वाला होय वो मुझ परमानंद मोक्ष के पद कौ पासकता है । जहां सूरज चंद्रमा और अग्नि आदि नही पहुंच सकैं हैं और जहां जाकर संसार मैं उलटा नही आता वोह मेरा परमधाम है देहों मैं जो जीव है सो मेरा ही अंश है उसी के सहारे से इन्द्रियें मन और प्राण कर्म फल प्राप्त करते हैं जीवात्मा जब स्थूल शरीर कौ धारण या त्याग करता है । तौ जैसे कि पवन पुष्पों से गन्ध को खींचलेजाता है वैसे अपने साथ इन्द्रिय आदिक सूक्ष्म शरीर को स्थूल से निकाल लेजाता है और उस सूक्ष्म शरीर के साथ विषयों कौ भोगता है परन्तु ज्ञानी पुरुष इस चेष्टा कौ जान्ते हैं मूर्ख नही जान सकते । योगी जो ज्ञान निष्ठ हैं वे मेरा ध्यान करके शरीर मैं आत्मा कौ देखते हैं मेरी भक्ति और ज्ञान से विमुखलोग जतन करते हुए भी नहीं देख सकैं हैं सूर्य चंद्र और अग्नि मैं जो तेज है वो मेरा ही है मैंही पृथ्वी मैं प्रवेश करके सब कौ धारण करता अर्थात् बल देता हूं और मैंही चंद्रमा मैं रसरूप से रह-कर औषधियों कौ पुष्ट करता हूं मैं ही शरीरों मैं जठरअग्नि होके अन्न कौ पचाता हूं । मैं सब के हृदय मैं बसूं हूं और स्मृति ज्ञान और भूल मुझी से जानौ मैं वेदों से जाना जाता हूं और वेद वेदान्त का मूल मैं ही हूं । लोक मैं क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं उनमैं नाश होने वाले पदार्थ क्षर और कूटस्थ (निर्विकार) अक्षर आत्मा कौ जानौं परमात्मा उत्तम पुरुष इन दोनों से भिन्न है जो सब लोकों मैं समाया हुआ सब का धारण करने वाला है । मैं क्षर और अक्षर दोनों से परे हूं इस कारण से पुरुषोत्तम कहा जाता हूं जो मुझे ऐसा जानकर भजे है वोही सब का ज्ञाता है यह अतिहि रहस्य (गुप्त) शास्त्रों

का सिद्धान्त है जो इस बात कों जानै वोही ज्ञानी और कृतकृत्य है ॥
इति पुरुषोत्तम योगो नाम १५ अध्यायः ॥ ॥

॥ सोलह्वां अध्याय ॥

(पुगल विहारी विनय हमारी सुनों ज़रा अबतौ प्राण प्यारे)
इस के वज़न पर गाना ।

हरिवचनसुनसमझकेपालौ इसीमैंकल्याणआपकाहै ।
बताया अध्याय सोलह्वीं मैं हरी ने मुक्ती का रास्ता है ॥ १ ॥

१—होदैवी संपत्ति जिसके, उसकौ नहीं किसीवस्तुकाभीभयहै ।
विशुद्ध मन ज्ञान मैं लगन हो वो दान दम-
यज्ञ मैं लगा है ॥ २ ॥

(१ से ३ तक)

पठनहो वेदोंका, साधुता, तप, अहिंसाअरुसत्य, क्रोधकानाश।
उदारता, शान्ति अरु अपैशुन, दया अचंचल,
स्वभावका है ॥ ३ ॥
हियाहोकोमल, लजीला, अचपल, हो उसमैंतेजअरुक्षमांकाभीबल।
पवित्रता, धीर्ज, होवै उसमैं वोद्रोह, अभिमानि-
त्यागता है ॥ ४ ॥

४—सुनौ संपदा जो आसुरी है तो दम्भ अरु दर्प, मानभी है ।
कठोरता, क्रोध, अज्ञता, भी ये दोष उस मैं-
अवश भरा है ॥ ५ ॥

५—है सम्पदा दैवी मोक्ष दाई फँसावै बंधन में आसुरी ही ।
न सोच कर संपदा जो दैवी है उस में तुमने-
जनम लिया है ॥ ६ ॥
७—स्वभाव जिसनरका आसुरीहो न जानै वो प्रवृती निवृत्ती ।
पवित्रता सत्य और आचार कदापि उसमें-
न दीखता है ॥ ७ ॥
८—जगत्कौ झूंटाकहैंवो अस्थिर नहींरचै जगको कोई ईश्वर ।
वो मानैं संजोग से परस्पर ये काम सेही-
जगत हुआ है ॥ ८ ॥
९—येनास्तिक ऐसी दृष्टिकरके निजआत्मातत्वको विसरके ।
करैं बुरे कर्म मूर्ख जगके विनाश कारण-
जनम लिया है ॥ ९ ॥
१०—अनन्तविषयोंकोकामनारखवो दम्भमदमानयुक्तमूरख ।
दुराग्रह से करैं असत् कर्म उन मैं भारी-
अशुद्धता है ॥ १० ॥
११—अपार चिन्तामैं ग्रस्तविषयोंके भोगकौमानैं मुख्यकर्तव्र ।
१२—बंधा है आशा मैं कामी क्रोधी कुकर्म से धन-
कमा रहा है ॥ ११ ॥
१३—येधनमिला आजफिरभी पाऊंयेमेरीहैवस्तुवोःमिलैगी ।
१४—हना वो शत्रू हूं ईश भोगी विविध मनोरथ-
विचारता है ॥ १२ ॥

१५—धनी कुटुम्बी हूं मैं अनूपम करूंगा मैं यज्ञ पाऊंगा सुख ।
१६—वो काम भोगी करैं यूं चिन्तन अवश्य ही-
नर्कों में पडा है ॥ १३ ॥
१७—बने हुए आपही प्रतिष्ठित घमंडी धनके नशे में पूरण ।
करैं वो पाषंड से भी जो यज्ञ वो विधी से-
गिरा हुआ है ॥ १४ ॥
१८—वो आश्रित काम क्रोध वल और दर्प अहंकार के सदाही ।
पराये अपने शरीरों में जीवों से उन्हें द्वेष-
बन रहा है ॥ १५ ॥
१९—गिराताहूं उन अधम नरोंको मैं आसुरी योनिमें निरन्तर ।
२० न पावैं मुझ को अनेक जन्मों में नीच जोनों-
में भर्मता है ॥ १६ ॥
२१—नरकके दरवाज़े काम और क्रोध लोभ तीनोंहैं नाशकर्ता ।
२२ इन्हें तजै सोहि आत्म कल्याण कर परम पद-
को पावता है ॥ १७ ॥
२३—जोछोडकर शास्त्रकी विधीको करैंहैं मनमाने कर्मप्राणी ।
परा गती और सुख न पावै न सिद्ध हो उस-
की कामना है ॥ १८ ॥
इसी से कर्तव्य या अकर्तव्यमें सदा शास्त्र ही को मानो ।
कहैं हैं मथुरेश शास्त्र विधि से ही कर्म करने-
की योग्यता है ॥ १९ ॥

॥ सोल्हवीं अध्याय का सार बार्ता में ॥

अब भगवान दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन करें हैं जिस मैं दैवी संपदा होती है उस मैं यह लक्षन पाये जाते हैं । किसी से भय न होना १ मन का शुद्ध होना २ ज्ञानप्राप्ति मैं रुचि ३ दानी होना ४ इन्द्रियों का दमन करना ५ यज्ञ करना ६ वेदों का पढना ७ साधुपना ८ तप ९ अहिंसा १० सत्य ११ क्रोध का नाश १२ उदारता १३ शान्ति १४ चुगली न करना १५ दया १६ स्वभाव का चंचल न होना १७ हिये का कोमल होना १८ लजीलापन १९ चपलताई का न होना २० तेज २१ क्षमा २२ पवित्रता २३ धीरज २४ किसी से वैरभाव का न होना २५ अभिमान का न होना २६ यह दैवी संपदा वाले मैं होते हैं । आसुरी संपदा मैं दम्भ १ दर्प (छल) २ अभिमान ३ क्रोध ४ कठोरताई ५ अज्ञान ६ यह दोष हैं । दैवी संपत्ति मोक्ष का कारण है और आसुरी बंधन का । परंतु अर्जुन तुम सोच न करो तुम्हारा जन्म दैवी संपदा मैं हुआ है जिस मनुष्य का स्वभाव आसुरी संपदा का है उस के लक्षण यह हैं। प्रवृति निवृति का न जानना, शौच और आचार का न होना, सत्य का अभाव, जगत असत्य और प्रतिष्ठा हीन है और काम करके एक दूसरे के संयोग से उत्पन्न होजाता है ईश्वर रचित नहीं है ऐसा मानना, । ऐसे विचार वाले नास्तिक मूर्ख बुरे कर्म करने वाले जगत के नाश कर्ता हैं और वे अनंत विषयों की कामना रखने वाले, दम्भ, अभिमान, और मदसे भरे हुए, हट करके कुकर्म करने वाले महा मलीन लोग हैं। उनकी चिन्ता का पार नहीं सदा काम और विषय भोग मैं लिप्त रहकर इसी को अपना कर्तव्य जान्ते हैं । वे लोग कामी और क्रोधी होकर आशा की फांसी मैं बंधे हुए केवल धन कमाने मैं लगे रहते हैं । आज इतना द्रव्य मिला कल इतना मिलैगा यह चीज मेरी है जो मुझै मिलै उस वैरी को मैंने मार लिया मैं मालिक और भोगी हूं इसी उधेड बुन मैं लगे रहते हैं ।

मैं धनी और कुटुम्बी हूं मेरे समान दूसरा नहीं है मैं यज्ञ करके स्वर्ग आदि शुभ भोगूंगा ऐसे चिन्तवन करते हुए नरक गामी होते हैं। अपने आप ही प्रतिष्ठित बने हुए घमंडी, धन के नशे में अंधे यादि पाखंड से ऐसे मनुष्य यज्ञ भी करें तो वो सफल नहीं होता विधि हीन होजाता है। वे लोग काम, क्रोध, बल, छल, और अहंकार के सदां वश में रहकर अपने पराये सब जीवों से वरभाव रखते हैं। ऐसे लोगों को नीच आसुरी योनी में जन्म देता हूं मुझे वो अनेक जन्मों में भी नहीं पा सकते। हे अर्जुन नरक के यह तीन दरवाज़े हैं जो नष्ट करने वाले हैं। काम, क्रोध, लोभ, इन तीनों से बचना चाहिये। इन से बचकर जो आत्म कल्याण करै सोही परम पद पासकता है और शास्त्र की विधि को छोड़कर जो मनमाने काम करता है उस का कभी कल्याण नही होता न सुख प्राप्त होता है इस लिये शास्त्र की आज्ञा कर्तव्य और अकर्तव्य में मान कर शास्त्र विधि सेही कर्म करना योग्य है

इति दैवासुर संपद्विभाग योगो नाम १६ अध्यायः॥

॥ सत्रहवां अध्याय ॥

(मेरे तो इक राम नाम दूसरा न कोई) इस के वज़न पर
राग झंझौटी अथवा प्रभाती में गाना।

श्री गीता अति पुनीत सुनिये चित लाई ।
नौका भव सिन्धु तरण हेतु यह सुहाई ॥श्री०॥
१—सत्तरह्वीं अध्या मैं अर्जुन यूं प्रश्न कियो ॥
श्रद्धा युत अविधि यजैं कहा गति तिन पाई ॥ १ ॥

२–हरि बोले प्राणिन की श्रद्धा है तीन भांत ॥
सात्विकि अरु राजसि पुनि तामसी कहाई ॥ २ ॥
३–सत्व के अनकूल होत श्रद्धा है सबही की ॥
श्रद्धा है जैसी जाकी तैसो कहलाई ॥ ३ ॥
४–सात्विक जन देवन कौं राजस यज्ञादिक कौं ॥
पूजत हैं भूत प्रेत तामस जन भाई ॥ ४ ॥
५–शास्त्र विरुध तप जो करैं कपट अहंकार भरे ॥
काम राग बलकी है उन मैं अधिकाई ॥ ५ ॥
६–तन इन्द्री जीवहु कौं दुखी करत मूरख सो ॥
निश्चय कर असुरन मैं गणना तिन पाई ॥ ६ ॥
७–तीन भांत के अहार भावैं सब मनुजन कौं ॥
यज्ञ दान तपहू कौं बरणूं समुझाई ॥ ७ ॥
८–आयु सत्व बल अरोग देजो प्रीत सुख को भोग ॥
सरस चिकनो थिर मनोज्ञ सात्विक प्रिय भाई ॥ ८ ॥
९–कटु अतिही लवन गरम तेज रूक्ष दाही जो ॥
अस अहार राजस प्रिय शोक दुःख दाई ॥ ९ ॥
१०–पहर बीतो बासी अन्न अरस सड्यो अरु जूंठन ॥
देव के अयोग्य भक्ष्य तामसैं सुहाई ॥ १० ॥
११–बिधियुत फलचाह रहित निश्चय थिर मनसे करत ॥
ऐसो यज्ञ सात्विक है भाषत यदुराई ॥ ११ ॥

१२–फल इच्छा मन मैं धार दंभसे करियत प्रचार ॥
ऐसो यज्ञ राजस है मध्यम कहलाई ॥ १२ ॥
१३–विधी हीन मन्त्र हीन अन्न दक्षिनादि हीन ॥
श्रद्धा रहित तामस सो यज्ञ कह्यो जाई ॥ १३ ॥
१४–सुर द्विज गुरु पूजा, शौच, साधुताई ब्रह्मचर्ज ॥
अहिंसा ये शारीरक, तप हैं समुदाई ॥ १४ ॥
१५–मृदुल सत्य प्रिय हितको बचन वेद पढनो सो ॥
वाणी को तप है यह, समुझ लेहु भाई ॥ १५ ॥
१६–मन प्रसन्न कोमलता मौन तथा मन निरोध ॥
शुद्ध भाव ये सब तप मानस कहलाई ॥ १६ ॥
१७–मन शरीर बाणी से श्रद्धायुत तप जो करै ॥
फल इच्छा रहित सोहि सात्विक कहाई ॥ १७ ॥
१८–पूजा सत्कार मान हेतु जो तप दम्भ सहित ॥
करियत सो राजस है बेगही नसाई ॥ १८ ॥
१९–अज्ञता से हट करकै तप जो करै दुख पाकर ॥
अन्य के बिनाश कौ सो तामस तपसाई ॥ १९ ॥
२०–दान जो दातव्य जान पात्र अनुपकारी अर्थ ॥
शुची देश काल मैं सो सात्विक सुखदाई ॥ २० ॥
२१–फल बिचार आसा उपकार की हिये मैं धार ॥
क्लेशित ह्वै देत सोहि राजस है भाई ॥ २१ ॥

२२–अशुचि देश काल मैं अपात्र कौं जो देत दान ॥
बिना आदरआदर सो तामस कहलाई ॥ २२ ॥
२३–ओं तत् सत् उच्चारण ब्रह्म के हैं तीनो शब्द ॥
इन तैं द्विज बेद यज्ञ आदि मैं उपजाई ॥ २३ ॥
२४–उच्चारिकै ॐ शब्द यज्ञादिक सिद्ध होत ॥
२५–फल न चाहैं मोक्ष कामी आचरैं सदाई ॥ २४ ॥
२६–सत् ये शब्द उच्चारिकै करियत शुभ कर्म सकल ॥
२७–महिमा सत् शब्द की मथुरेश अधिक गाई ॥ २५ ॥

॥ सत्रहवाँ अध्याय का सार वार्ता में ॥

अर्जुन प्रश्न करै है कि जो लोग श्रद्धा रख के विधि हीन कर्म करैं हैं उन की कैसी गति होय है।
तब श्रीभगवान् आज्ञा करैं हैं कि प्राणियों की श्रद्धा तीन प्रकार की होय है सात्विकी १ राजसी २ तामसी ३ सत्व के अनुसार सब की श्रद्धा होय है जैसी जिस की श्रद्धा होय वो उस श्रद्धा वाला कहलाता है (सत्वनाम स्वभाव का है) सात्विकी श्रद्धावाले देवताओं कौ पूजैं हैं और राजसी यज्ञ आदि कर्म मैं रुचि रखते हैं और तामसी श्रद्धा वाले भूत प्रेतों कौ पूजते हैं। जो लोग शास्त्र की विधि के विरुद्ध तप करते हैं उन मैं कपट और अहंकार भरा होता है काम और राग उन मैं अधिक होता है वो लोग अपने शरीर और इन्द्रियों और जीवात्मा कौ दुख देने वाले मूरख हैं और असुरों मैं उन की गिन्ती होय है। आहार भी तीन प्रकार के हैं और यज्ञ, दान, तप, यह भी तीन २ ही प्रकार के हैं उन का लक्षण कहैं हैं। आयुष्य, सत्व, बल और आरोग्य और प्रीति सुख भोग का देने वाला सरस चिकना स्थिर

रहने वाला मन को प्यारा लगै ऐसा आहार सात्विक जनों को प्रिय लगता है। और कड़वा अत्यन्त नमकीन, बहुत गरम, तेज़ रूखा, दाहकरने वाला आहार राजसियों को भावै है और शोक और दुख का देने वाला होता है एक पहर जिस भोज्य पदार्थ को बने बीत जाय, बासी, रसहीन, सड़ाहुआ, जूठा, ऐसा अन्न तामस लोगों को पसंद होता है और वो देवताओं के अर्पण करने के योग्य नहीं है। सात्विक यज्ञ उसे कहते हैं जो विधि विधान से किया जावै और उसके फल की इच्छा न हो और निश्चय के साथ मन को दृढ करके किया जावै । राजस यज्ञ उसे कहते हैं जो फल की इच्छा रखके दम्भ से किया जावै और ऐसा यज्ञ मध्यम कहलाता है। तामस यज्ञ वो कहलाता है जो विधि हीन, मन्त्र हीन, और अन्न दक्षिणा आदि से रहित श्रद्धा के बिना किया जाय। अब तप तीन प्रकार का कहैं हैं। शारीरक तप देव ब्राह्मण गुरु पूजा शौच साधुपन ब्रह्मचर्य और अहिंसा को कहते हैं। मुलायम, सत्य, प्यारा हित भरा, ऐसा बचन और वेद का अध्ययन यह वाणी का तप है । मन का प्रसन्न रहना, कोमलता, मौन में रहना और मन का रोके रखना और भावका शुद्ध रहना यह मानस तप कहलाता है। ऊपर कहे हुए तीनों तप (शरीर वाणी और मन के) सात्विक तप कहे जावैंगे जब श्रद्धा युक्त होकर फलकी इच्छा के बिना किया जावै। पूजा सत्कार और मान (बड़ाई) पाने के लिये जो तप दम्भ से किया जाय वो राजस कहलाता और जल्दी नष्ट होजाता है। अज्ञान्ता के साथ हट (जिद्द) करके दुख पाकर या दूसरे के नाश करने को जो तप किया जाय वो तामस तप जानों । अब दान भी तीन प्रकार का कहैं हैं। जो दान अवश्य देने योग्य जान कर, सुपात्र को दिया जावै और उस से अपने को उपकार की आस न की जावै और पवित्र स्थान और उत्तम समय पर किया जावै वह सात्विक दान है फल का विचार करके उपकार को आस मनमें रखकर दुख पाके जो दान दिया जावै वो राजस है। और

मलीन जगह पर अशुद्धि काल में अपात्र को अन्न आदर बिना जो दिया जावै सो तामस दान है। ओं तत् सत् यह तीनों शब्द ब्रह्मरूप उच्चारण किये जावैं हैं इन से ही आदि में ब्राह्मण, वेद, और यज्ञ उत्पन्न हुए हैं प्रणव जो ओंकार शब्द है इस को उच्चारण करके ही यज्ञादिक सिद्ध होते हैं। फल की इच्छा न करके मोक्ष के चाहने वाले इस का उच्चारण करके यज्ञादिक कर्म करते हैं और सत शब्द का उच्चारण करके सारे शुभ कर्म किये जावैं हैं अश्रद्धा से किये हुए कर्म असत् कहावैं हैं॥

इति श्रद्धात्रयविभाग योगो नाम १७ अध्यायः॥ ॥

॥ अठार्वाँ अध्याय ॥

(तुमतौ सांवरिया गोपाल हौ नंदलाल दिल के काले॥ इस के वज़न पर)

गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी इसमें चित्त लगारे॥
१ आई अठार्वीं अध्याय ※ अर्जुन प्रश्न कियो हरषाय॥
दो सन्यास त्याग बतलाय ※ तब यूं बोले गोविन्द प्यारे॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १ ॥
२ जितने सकाम कर्म बिलास ※ तिनको तजिबो है सन्यास॥
त्यागै सकलकर्मफल आस ※ ताकौं त्याग कहैं बुध सारे॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २ ॥
३ कहैं कोई दोष है त्यागौ कर्म ※ कोई यज्ञादि बतावैं धर्म॥
४ कहैं हरि बतलाऊं मैं मर्म ※ त्रिविधहैत्यागसुनौबिस्तारे॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी ॥ ३ ॥

५ सुनलो यज्ञादिक तप दान ※ सबकों करन योग्यही मान ॥
६ पावन कर्ता हैं अस जान ※ करो फल इच्छा संग निवारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४ ॥
७ उचितनाहिनित्य कर्मसन्यास ※ मोहवस करैजो वाकोन्यास ॥
नामहै तामसत्यागहि तास ※ करैसो मूरख बिना बिचारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ५ ॥
८ क्लेशलखि कर्मकरनमैंमीत ※ तजैजो दुःखमान भयभीत ॥
हैराजसत्यागसोहिअनरीत ※ त्यागफलवामैं कछुभीनारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ६ ॥
९ करै कर्तव्य जान जो नित्त ※ संगअरुफलइच्छानहिचित्त ॥
कहावैसात्त्विकत्यागअमित ※ किये तैं होवैं मनुज सुखारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ७ ॥
१० द्वेषनहि अनिष्ट कर्मसेजाहि ※ सक्त नहि इष्ट कर्म के मांहिं ॥
सात्त्विकत्यागी सोइकहाहि ※ अचलमतिसंशयरहितसदारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ८ ॥
११ कर्मतज सकै नहीं तनवान ※ तजैंफलसोही चतुरसुजान ॥
१२ शुभाशुभमिश्रत्रिविधफलजान ※ अत्यागीजनही भोगनहारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ९ ॥
१३ कर्म के पांच हेतु लेजान ※ देह अरु जीव इन्द्रियां प्राण ॥
१४ पांचवां प्रेरक दैवहि मान ※ इन्हीं तैं कर्म होत हैं सारे ॥
१५

गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १० ॥

१६ केवल जीवहि कर्ता मानै ॐ सो नादान बुद्धि भरमानै ॥
अपनो रूप नहीं पहचानै ॐ यातैं हों नहि भव से न्यारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ११ ॥

१७ अकर्ता हूं मैं असजो ज्ञानी ॐ ताकी बुद्धि अलिप्तअमानी ॥
हनैवो यदिजगके सबप्राणी ॐ सोनहिंबंधैन किसीकोमारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १२ ॥

१८ ज्ञानज्ञाता अरु ज्ञेय यहतीन ॐ कर्म के प्रेरक हैं अस चीन ॥
करणकर्ता पुनिकर्म प्रवीन ॐ क्रिया के आश्रय हैं निर्धारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १३ ॥

२० भावइकअविनाशी सबमांहि ॐ लखैजो भेद गिनै कछुनाहिं ॥
सात्विकज्ञान जानिये ताहि ॐ भेद बुद्धी नहि उर में धारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १४ ॥

२१ भावनानाविध जीवनमांहि ॐ एकता उर में जाके नाहिं ॥
ज्ञानअसराजसनामकहाहिं ॐ मते मन उपजैं न्यारे न्यारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १५ ॥

२२ तत्व को जामैं होय न भान ॐ अल्पफलभासैअधिकमहान ॥
युक्तिवर्जितजो थोथाज्ञान ॐ ताहीको तामस ज्ञानकहारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १६ ॥

२३सं, कर्मअरु कर्ता तीन त्रिधान ॐ सात्विकराजसतामसजान ॥

२९ होयजोगुणाजिसनांहिमधान ※ हरीलक्षनतिसाबिधविस्तारे ॥
तक गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १७ ॥
३० भयअभय कार्यअकार्य मंझार ※ प्रवृति निवृत्ती जानन हार ॥
बंध अरु मोक्षकी जानै सार ※ सात्विकीबुद्धिसोइचितधारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १८ ॥
३१से यथावत् धर्म अधर्म विचार ※ न होवै विवेक जिसके द्वार ॥
बुद्धि सो राजस है बेकार ※ तामसीमति बिपरीतविचारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ १९ ॥
३५ आगे धृती हु तीन प्रकार ※ कहीगुण भेदसेसो उरधार ॥
तक सात्विकी धृतीहै श्रेष्ठविचार ※ राजसीतामसिकार्यबिगारै ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २० ॥
३७ जोहिसुखपहलेविषसमहोय ※ अमृतकेतुल्यपिछाडीजोय ॥
कहैं सात्विकवाकों सबकोय ※ आतमअरुबुद्धिप्रसादसंवारै ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २१ ॥
३८ इन्द्रिअरु विषयन तैं जोसुख ※ अमृतपहलेफिरविषसमदुख ॥
येराजससुखकहियेसन्मुख ※ पाप कों ऐसो सुख संचारै ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २२ ॥
३९ नीदआलस्य प्रमादसे जन्य ※ देतदुख आगे पीछे अमन्य ॥
कहावै तामस सुख सोहन्य ※ नरकमैं प्राणिनकौयहिडारै ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २३ ॥

४० भूमि अरु स्वर्ग मैं अस नाहि कोय ※ गुणौं के वश मैं जो नहि होय ॥
४१ चार जो वरण कहावैं सोय ※ कर्म इनके गुण ही अनुसारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २४ ॥
४२ शमदमतप अरु शौचविधान ※ शान्ति अरु सरल भाव पुनि ज्ञान ॥
आस्तिकपणो और विज्ञान ※ ब्राह्मण कर्म हैं येही सारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २५ ॥
४३ वीरता तेज धृती चतुराई ※ युद्ध मैं अचल हि रहै सदाई ॥
रहे दातारि ईश्वरताइ ※ कर्म यह छात्रिन के सुन प्यारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २६ ॥
४४ है खेती गोरक्षा व्योपार ※ वैश्य को कर्म यही निर्धार ॥
४५ शूद्र को सेवा मैं अधिकार ※ करै निज कर्म सो सिद्ध आरे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २७ ॥
४६ रचो जिन सकल जीव संसार ※ पूज वाकौं निज कर्मन द्वार ॥
४७ विगुणहू स्वधर्म श्रेष्ठ विचार ※ स्वभाविक कर्म न पाप पैंडारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २८ ॥
४८ सदोष हु सहज कर्म मत त्याग ※ बुद्धि निर्लिप्त राख वैराग ॥
४९ होय निष्काम कर्म फल त्याग ※ परमगति याही विधि सौं पारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ २९ ॥
५० ब्रह्म प्राप्ती को कहूं उपाय ※ शुद्ध बुद्धी जिसकी होजाय ॥
५१ संजमी विषयन सौं हटजाय ※ राग अरु द्वेष चित्त सै टारै ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३० ॥

५२ रह एकान्त करै लघुभोजन ※ जीतै वाणी काया अरु मन ॥
ध्यानी वैरागी वो सज्जन ※ वल अभिमान दर्प कौं छारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३१ ॥
५३ तजिकै कामक्रोध अरुवंधन ※ ममतारहित शांतराखैमन ॥
ऐसे ब्रह्म भाव कौ हरिजन ※ पाकै रहत नित्य सुखारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३२ ॥
५४ ऐसो मन प्रसन्न ब्रह्म ज्ञानी ※ चिन्ताइच्छारहितजोप्राणी ॥
होकै सम दृष्टी विज्ञानी ※ पावै मेरी भक्ति परारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३३ ॥
५५ मोकों भक्तिहि तैं नर जानै ※ जैसो मैं हूं तत्व पिछानैं ॥
पाकर तत्व ज्ञानकों स्याने ※ रहैं न कबहू मुझ से न्यारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३४ ॥
५६ करैसबकर्मशरणममआय ※ कृपा मेरी से परम पद पाय ॥
५७ कर्मफल अर्पौ मोहिसुभाय ※ सुमतिकरमोमैंचित्तलगारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३५ ॥
५८ चित्त कौ मेरे मांहि लगाय ※ कृपाममहोयकष्टसबजाय ॥
सुनै नहिजो मदमनमैं लाय ※ अवशहों नष्ट मनोरथ सारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३६ ॥
५९ चहै तू युद्ध मे यदि हटजाय ※ ये तेरो मिथ्या है व्यवसाय ॥
६० प्रकृतितोहिदेगीअवशलड़ाय ※ स्वभाव से कर्म हैं प्रेरनहारे ॥

गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३७ ॥
६१ सबन के हिर्दे ईश विराजै ※ काया जन्त्रमैं प्राणी राजैं ॥
वाकों प्रेर करावै काजै ※ माया के चक्कर मैं डारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३८ ॥
६२ यातैं शरण ईश की आउ ※ होनिस्कपटचरणचितलाउ ॥
वाहिसेपरम शान्तिकोंपाउ ※ परमपद सोहीं वरवशनहारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ३९ ॥
६३ ज्ञानकियोअतिहीगुप्तबखान ※ विचारोनिजकरतवलोठान ॥
६४ सुनाऊं परम गुप्त अब ज्ञान ※ तूमेरा प्रियदृढ मित्रसखारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४० ॥
६५ मोमैं मन लगाय हो भक्त ※ ममपूजन वन्दन अनुरक्त ॥
मोहि को पावैगो यह व्यक्त ※ प्रतिज्ञा करूं मैं तोसूं प्यारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४१ ॥
६६ धर्मसुबत्यागशरणममआय ※ सकल पापनसे देउं छुडाय ॥
कदाचितसोच न उरमैं लाय ※ मोक्षपावै असमंत उरधारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४२ ॥
६७ संजमीभक्त न जो जनहोय ※ असेवक निन्दकहू जोकोय ॥
नहीं गीता अधिकारी सोय ※ ताहिनहि गीता ज्ञानसुनारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४३ ॥
६८ यह जो परम गुप्त है ज्ञान ※ सुनाओभक्तहिकौअसजान ॥

मेरी परा भक्ति को ठान ※ सोजन मोहि को पावैगारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४४ ॥
६९ तासे अधिक नहीं प्रिय मोय ※ जो गीता को पाठक होय ॥
७ मैंनिजमतकहसमझायोतोय ※ इष्टहो मिलूं मैं ताहि सदारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४५ ॥
७१ गीता श्रद्धा वान हु प्राणी ※ यहसुनहोयअवशकल्यानी ॥
७२ अर्जुन कह तेरी मन ग्लानी ※ मिटीकिनाहिमोयबतलारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४६ ॥
७३ अर्जुन बोले यूं करजोर ※ नस्योअज्ञान मोहसबमोर ॥
पालिहों अवश वचनमैं तोर ※ धन्य धन श्रीमथुरेश मुरारे ॥
गीता ज्ञान भक्ति भंडार ,, प्राणी० ॥ ४७ ॥

॥ अठारहवें अध्याय का सार वार्ता में ॥

अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे भगवान् सन्यास का तत्व (अर्थ)और) त्याग क्या चीज़ है यह मैं जानना चाहता हूं ॥
तब श्रीमहाराज उत्तर देते हैं कि सकाम कर्मों के त्याग देने का नाम सन्यास है और सब कर्मों के फल के तज देने को त्याग कहते हैं कोई पंडित लोग कर्म को दोष वाला समझ कर उसे त्यागने योग्य कहते हैं और दूसरे कहते हैं कि यज्ञ, तप, दान यह कर्म नहीं त्यागने योग्य हैं । मेरे मत में त्याग तीन प्रकार का है सो सुनो । यज्ञ दान और तप यह कर्म तो मेरे मत में त्यागने योग्य हैं ही नहीं क्यों कि यह तो पवित्र करने वाले हैं । परन्तु इन कर्मों को इस रीति से करना उचित है कि करते समय उन में

आसक्ति (संग) न हो अर्थात् मैं यह कर्म करता हूं मेरा यह कर्म है ऐसा भाव न हो दूसरे फल इन कर्मों का मुझे मिलैगा ऐसी इच्छा न रख कर कर्म किया जावे और अपना कर्तव्य (फ़र्ज़) समझ कर करै। नित्य कर्म का त्याग उचित नहीं है परन्तु मोह (अज्ञान) से यदि उसे त्याग देवै तो इस का नाम तामस त्याग है। और नित्य नैमित्त कर्मों के करने मैं शरीर कौ परिश्रम और दुख होय है इस भयसे जो कर्म का छोड देना सो राजस त्याग कहलावै है उससे त्याग का फल कुछ नहीं मिलता। और कर्म करना शास्त्र की विधि के अनुसार आवश्यक (ज़रूरी) है ऐसा समझ कर जो करै और संग (आसक्ति) और फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करै तौ इस का नाम सात्विक त्याग है। ऐसा त्यागी जो आत्म और अनात्म के विवेक से शुद्धचित्त होकर कर्म करने मैं जो शरीर कौ कष्ट होय उसे बुरा न समझै और सुखदाई कर्म मैं खुशी न मानै अर्थात् आसक्त न होय वोह विवेकी बुद्धिमान संदेह रहित होता है। देहधारी से सर्वथा कर्म का त्याग करना तौ असंभव ही है इस लिये कर्म के फल का त्यागी ही त्यागी है। कर्म के फल तीन प्रकार के होय हैं एक तौ स्वर्ग आदिक का मिलना इष्ट या शुभ है दूसरा नरक आदि मैं जाना अनिष्ट (अशुभ) तीसरे मिश्र (दोनो से मिला हुआ) यह फल उनकौ मिलै हैं जौ कर्म के फल का त्याग नहि करके कर्म करैं हैं फल त्यागी कौ नहीं मिलैं हैं। कर्मों के कारण पांच हैं देह १ जीव २ इन्द्रियां ३ प्राणों का व्यापार ४ देव (अन्तर्यामी सब का प्रेरक) ५ इन्हीं से सारे कर्म होय हैं जो लोग इन पांच कारणों को न जान कर केवल जीवकौ ही कर्ता मान्ते हैं वे अपने स्वरूप को न जानकर नादान जन्म मरण के फंदे मैं फंसे रहते है। और जो ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप कौ जानकर अपने कौ अकर्ता मान्ता है और जिस की बुद्धि लिप्त नहीं होती उस का शरीर यदि जगत के सारे प्राणीयों कौ मारडालै तोभी वो बंधन मैं नहीं आता और मारने वाला नहीं गिना जाता। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय, यह तीन

कर्म के प्रेरक हैं और करण, कर्ता, कर्म यह तीन क्रिया के आश्रय (आधार) हैं (अर्थात् कर्म करने में प्रवृत्ति कब होती है जब कर्तव्य का ज्ञान होता है जानने वाले को ज्ञाता और जानी हुई वस्तु को ज्ञेय कहते हैं जानने के पीछे क्रिया होती है करने वाले को कर्ता और जो किया जाय उसे कर्म कहतेहैं) ब्रह्मा से लेकर चींटी तक सब में जो एक परमात्मा का अविनाशी रूप भेद रहित दिखाई देना इस का नाम सात्विक ज्ञान है। और जिस ज्ञान से प्राणियों में अनेक प्रकार के भाव जाने जावैं उसे राजस ज्ञान कहते हैं। और एक कार्य में सर्व का समझलेना, तत्व हीन विचार, थोडे, फल को बहुत जानना, ऐसे थोथे ज्ञान को तामस ज्ञान कहते हैं। इसी प्रकार कर्म और कर्ता भी तीन तीन प्रकार के सात्विक, राजस तामस कहे हैं। अब बुध्दि भी सत्व आदि भेद से तीन प्राकर की कही जाय है। भय, अभय, कार्य, अकार्य, प्रवृत्ति निवृत्ति, बंध और मोक्ष जिस से जाने जावैं उस का नाम सात्विकी बुद्धि है और जिस से धर्म अधर्म का विचार न होसके उस विवेक रहित बुद्धि का नाम राजसी है। और जिस से सत्य का असत्य ऐसा विपरीत (उलटा) ज्ञान होय उस का नाम तामसी बुध्दि है। इसी प्रकार धृति भी गुण भेद से तीन ही प्रकार की कही है उस में सात्विकी धृति उत्तम है। सुख भी तीन प्रकार के हैं जो सुख आरंभ में तो विष के समान प्रतीत होय और पीछे अमृत जैसा प्यारा लगै सो सात्विक है और उस से आत्मा और बुध्दि की प्रसन्नता होय है। और इन्द्रियों और विषयों के संबंध से जो सुख पहले तो अमृत तुल्य पीछे विष समान होय सो राजस सुख कहलाता है और यह पाप कराने वाला है। नींद आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ जो सुख आदि और अन्त दोनों में दुख का देने वाला तामस सुख कहलाता है यही नरक में डालने वाला है। पृथ्वी और आकास में ऐसा कोई जीव नहीं है जो गुणों के आधीन नहो। चार वरणों को भी गुण भेद से ही रचा गया है उनके कर्म गुणों के अनुसार

होते हैं। शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, सीधापना, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकपना, यह ब्राह्मण के स्वभावसिध्द कर्म हैं ! वीरपना, तेज, धृति, चतुराई, युध्द मैं दृढताई, दातारी, प्रभुताई, यह कर्म क्षत्रियों के हैं। खेती, गऊरक्षा, व्योपार, यह वैश्य के, और सेवा चाकरी शूद्र का कर्म है। सारे संसार कौ रचने वाले परमात्मा कौ अपने २ कर्मों कौ करता हुआ पूजै इसी मैं कल्याण है। अपना धर्म चाहै थोडे गुणवाला या गुण हीन भी श्रेष्ट है और पराया धर्म कैसाही गुण वाला क्यों न हो भयका देने वाला है। अपने स्वाभाविक कर्म को त्याग न करे चाहे वो दोष वाला ही हो परन्तु बुध्दि कौ कर्म मैं आसक्त न होने दे मन मैं वैराग रक्खै कामना न रख कर फल की चाह से रहित होकर कर्म करने से परमगति कौ प्राप्त होता है। ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय येही है कि बुध्दि शुध्द (निर्मल) होय और मन और इन्द्रियों का संजम (काबू मैं रखना) विषयों से वैराग और चित्त मैं किसीसे राग द्वेष न रहै। एकान्त मैं रह कर हलका भोजन करै वाणी काया और मन कौ जीतै ध्यान निष्ठ होकर वैरागी रहै बल, अभिमान, छल, इन से दूर रहै। काम और क्रोध कौ त्याग कर माया के बंधन मैं न फंसकर ममता रहित रहै और मन मैं शान्ति को धारै ऐसा सज्जन ब्रह्म भाव कौ प्राप्त होकर सदां सुखी रहता है। ऐसे ब्रह्म भाव कौ प्राप्त होकर जो सदां प्रसन्न चित्त रहता और किसी बात की चिन्ता और इच्छा नही रखता और सब मैं समान दृष्टि रखता है वोह मेरी परभक्ति का अधिकारी होता है। हे अर्जुन ? मुझ कौ भक्ति करके ही मनुष्य जानसकै है मेरे यथावत स्वरूप का तत्वं पहचानै सो मुझ से न्यारा नही है। मेरी शरण होकर सब कर्म करै वोह मेरी कृपा का पात्र होकर परमपद पाता है। कर्मों के फल कौ मुझ मैं अर्पण कर और सुमति धारण करके मेरे मैं चित्त कौ लगाये रख इस से सारे दुख दूर होजायंगे और मेरी कृपा कौ पावैगा और जो मन मैं घमंड लाकर इस बात पर ध्यान न देगा तौ सारे मनोरथ नष्ट

होजायेंगे । तू यदि युद्ध करने से बचना चाहे तो नहीं बच सकेगा क्यों कि प्रकृति तुझ को बलात्कार कर के युद्ध कर्म में अवश्य लगा देगी देखो ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में विराज मान है और वो अपनी माया से जन्तर में खिंचे हुए प्राणियों को घुमा रहा है (उमादारुयोषित की न्याई। सबै नचवात रामगुसांई ॥) इस कारण से ईश्वर की शरण में आजा और निष्कपट होकर उसी के चरणों में मन को लगा उसी से तुझे शान्ति मिलेगी और वोही परमपद देने वाला है । यहां तक मैंने तुझ को अति गुप्त ज्ञान का उपदेश किया इस को अच्छी तरह विचार कर मन में निश्चय करले कि तुझे क्या करना उचित है । अब तुझे परम गुप्त (गुप्ततम) ज्ञान (जिस से बढ़कर आगे कोई उपदेश के योग्य वस्तु नहीं है) सुनाता हूं इस लिये कि तू मेरा अत्यन्त प्यारा मित्र और सखा है वोह क्या है सो सुन, मेरे में मन को लगा और मेरा भक्त हो मेरी ही पूजा और वन्दना में अनुरागी हो ऐसा करने से तू अवश्य मुझ को प्राप्त होगा यह प्रतिज्ञा करके कहता हूं । सब धर्मों को छोड कर अर्थात् ऊपर किये हुए उपदेश के अनुसार सारे कर्मों में आसक्ति और फल की इच्छा को तज कर मुझ एक परमात्मा में अनन्य भाव से शरण होजा मैं तुझे सब पापों से छुडा कर मुक्ति दूंगा किसी प्रकार की चिन्ता मत करै । यह सब से आख़िरी उपदेश परमासिद्धान्त है) अब श्रीभगवान् गीता उपदेश सुनाकर यह आज्ञा करैं हैं कि जो संजम रखने वाला मेरा भक्त न होय और मुझ में स्वामी और अपने में सेवक भाव नहीं रखने वाला और निन्दा करने वाला होय उस को यह मेरा गीता का उपदेश हरगिज़ न सुनाना । और प्रेमी भक्त को यह परम गुप्त उपदेश ज़रूर सुनाना वो इस के द्वारा मुझ को अवश्य प्राप्त होगा। जो इस गीता उपदेश का पठन पाठन करने वाला होगा वो मुझे अत्यंत

ही त्याग होगा और उसको मैं इष्टभाव से ज़रूर मिलूंगा यह मेरा निज मत मैंने तुझे सुनाया है । इस के श्रोता भी कल्याण को प्राप्त होंगे अब अर्जुन कहो तुम्हारी मनकी ग्लानी मिटी या नहीं ? ।

तब हाथ जोड़ कर अर्जुन कहते हैं कि महाराज मेरा अज्ञान और मोह सब दूर होगया और पूरा होश होगया अब निश्चिन्त होकर आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूंगा ॥

॥ इति सन्यास योगो नाम १८ अध्यायः ॥

(१) ॥ श्रीगुरू महिमा की ग़ज़ल ॥

प्यारे सतगुर के चरण की जो शरण आता है ॥
छूटकर जन्म मरण से वोहि सुख पाता है ॥ १ ॥
ख़ुद जो सोता है वो औरों को जगाये क्यों कर ॥
सच्चा मुर्शिद है जो तुरिया से गुज़र जाता है ॥ २ ॥
इश्क़ कामिल हो जिसे और हो पक्का आमिल ॥
ख़ुद वो महबूब का महबूब ही बन जाता है ॥ ३ ॥
जिसका पुर दर्द है दिल प्रेम से पुर है क़ालिब ॥
ज़र्रे ज़र्रे में उसे हर ही नज़र आता है ॥ ४ ॥
प्रेम का जबकि उमडता है समंदर दिल में ॥
ग़ैरे दिलबर न कोई और उसे भाता है ॥ ५ ॥
गुलपै बुल बुल है फ़िदा शमापर परवाना निसार ॥
तलबे हक़ का सबक़ हक़ तुझे सिखलाता है ॥ ६ ॥
नज़रे मेहरो करम से तुझे सतगुर देखें ॥
दूर कुलफ़त हो सभी राज़ ख़ुला जाता है ॥ ७ ॥
गुरू कृपा से निराकार निरंजन मथुरेश ॥
होके साकार वो आंखों में समाजाता है ॥ ८ ॥

(२) ॥ राग कानड़ा ॥

सतगुर महिमा बरणी न जावै । सतगुर० ॥
अलख अगोचर ब्रह्म निरंजन, सो गुर सहज प्रघट दरसावै ॥
गुर सेवा दृढ नौका जानौ, भवसागर से पार लगावै ॥
अज हरि हर से गुरुकी महिमा, अधिक पुराण वेद जस गावै ॥
हरि रूठे गुरु लेत मनाई, गुरु रूठे हरि निकट न आवै ॥
अति दुर्लभ अध्यातम विद्या, बिन गुरु कृपा कोइ नहीं पावै ॥
श्रीमथुरेश मिलन को मारग, गुरु प्रसन्न हो सहज बतावै ॥

(३)॥ गुरू महिमा का पद, नाटक की चाल में ॥

स्वामी सतगुर हमारे, नाना पापी उबारे, हिये करुणा को धारैं, दया के धाम, धाम, धाम, धाम, धाम, ३ ॥ होवै हिये में प्रकाश, अविद्या को नाशैं, एजी संशय विनाशैं प्रकाशैं हरिनाम ॥ देवैं अध्यात्म ज्ञान, काटैं भव के बन्धान, दया दानी सरनाम, पूरैं काम, काम, ३ ॥ चारों वेदों में प्रधान गुरू ही बखाने, एजी उनके कहांलों गुणों का करूं गान ॥ नहीं सतगुर समान, कोई कृपा की खान, गुरुदेव मेहरबान आठो जाम जाम जाम ३ ॥ भारी पापी प्रचंड शरण हूं तिहारी, नैया मेरी पुरानी पड़ी है मझ धार ॥ भवसागर अपार, सूझै नाहीं किनार, कहै मथुरा पुकार त्राहि मां मां मां ३ ॥

(४) ॥ ग़ज़ल ॥

जलवये महबूब यकसां संगोज़र मैं देखिये ॥
प्रेम से दिलवर को अपने दिल के घरमैं देखिये ॥ १ ॥
मुर्शिदे कामिल का नाज़िल हो अगर फ़ज़्लो करम ॥
हरको हरदम हर तरफ़ हर वर्गो बर मैं देखिये ॥ २ ॥
उम्र खोई मुफ्त मैं उस बेनिशां के खोज मैं ॥
हंसके सतगुर ने कहा दिलवर को बर मैं देखिये ॥ ३ ॥
ख़ुद सदफ़ दरियाओ दुर ख़ुद ख़ुद जमीं और तुख्म ख़ुद ॥
उसकी ख़ूबी हर शजर बर और गुहर मैं देखिये ॥ ४ ॥
ख़ुद ज़ुलेखां ख़ुदही यूसुफ़ लैला और मजनूं भी आप ॥
गोपियों का इश्के सादिक़ मुरलीधर मैं देखिये ॥ ५ ॥
दिल मैं हो सच्ची तलब उमडे जो दरिया प्रेम का ॥
लुत्फ़े वस्ले श्यामसुंदर हर लहर मैं देखिये ॥ ६ ॥
ज़र्रे ज़र्रे मैं झलक उस नूर की भरपूर है ॥
चश्मे हक़्बीं से उसे शमसो क़मर मैं देखिये ॥ ७ ॥
शेर बन निकला सितूं से होगया फ़ौरन ज़हूर ॥
उसको हाज़िर आलमे ख़ौफ़ो ख़तर मैं देखिये ॥ ८ ॥
कुछ नहीं मुश्किल अगर सतगुर की होजावै दया ॥
जलवये मथुरेश हर दीवारो दर मैं देखिये ॥ ९ ॥

(५) ॥ ग़ज़ल ॥

दूर सुनकर मुद्दतों भटके तुम्हारी याद में ॥
शुक्र है पाये सनम इस ख़ानय बरबाद में ॥ १ ॥
सच्चे तालिब से कहीं मतलूब होसकता है दूर ॥
क्या न थी मौजूद शीरीं ख़ूने तन फ़रहाद में ॥ २ ॥
नालाज़न बुलबुल कहीं लाला कहीं गुल हो कहीं ॥
तुम ही तो जलवा नुमा हो कुमरीओ शमशाद में ॥ ३ ॥
ख़ुद ही माया ब्रह्म ख़ुद त्यो शक्ति सीताराम ख़ुद ॥
तुम ही राधेश्याम हर मिल्लत की हो बुनियाद में ॥ ४ ॥
वेदो अंजीलो कुरां हैरां हुए पाया न खोज ॥
खुल गई सारी हक़ीक़त बांसुरी के नाद में ॥ ५ ॥
जज़्बये उलफ़त तुम्हें करलेता है फ़ौरन मुतीअ ॥
होगए हाज़िर हुज़ूरे गज धुरू प्रहलाद में ॥ ६ ॥
दस गुनी दूरी बढ़ा मा वो मनी के सिफ़ से ॥
वरना ग़ैरज़ तू न था कुछ ख़ाको आबो बाद में ॥ ७ ॥
जब ख़ुदी थी तुम न थे बे ख़ुद हुआ तब आमिले ॥
खुलगया राज़ आते हो काशाना ग़ैराबाद में ॥ ८ ॥
ज़र्रा ज़र्रा में नुमायां नूर हो मथुरेश का ॥
मुर्शिदे कामिल क़मर बस्ता हो गर इमदाद में ॥ ९ ॥

(६) ॥ ग़ज़ल

मदन मोहन सुघर सोहन हमारे प्राण प्यारे हैं ॥
वोही ज्योतिः निरंजन रूप वेदों ने उचारे हैं ॥ १ ॥
प्रकृति पुर्ष है वोही, हैं माया ब्रह्म भी सोही ॥
सगुण निर्गुण कहै कोई वोही जसुधा दुलारे हैं ॥ २ ॥
थे पहिले एक सत् चित् घन हुए दो सृष्टि के कारण ॥
उसीने अपनी माया से अनेकन रूप धारे हैं ॥ ३ ॥
वोही व्यापक चराचर में मनोहर सांवला सुंदर ॥
हर इक सूरत में मूरत में नुमायां नंसीवारे हैं ॥ ४ ॥
वोही हैं रूह हरतन में प्रकाशैं बुद्धि और मन में ॥
हर इक फ़न में वोही मोला निगम आगम पुकारे हैं ॥ ५ ॥
करैं हरचीज़ को रूशन नहीं लगता उन्हें दूषन ॥
वो मिस्ले नूर म्हेरो माह सब में सब न्यारे हैं ॥ ६ ॥
परम भक्तों रक्षा को परम दुष्टों की शिक्षा को ॥
रखाने को सनातन धर्म के औतार धारे हैं ॥ ७ ॥
हो उनकी चाहे बदनामी न हो भक्तों की ना कामी ॥
पितामह और बाली संग में करतब निहारे हैं ॥ ८ ॥
भजो जिस भाव से उनको उसी में वो मिलैं तुमको ॥
वो प्रेम आधीन श्रीमथुरेश सब संकट निवारे हैं ॥ ९ ॥

(७) ॥ ग़ज़ल ॥

यह ज़माना ख्वाबो ख़याल है किसी बाज़ीगर का कमाल है ।
बिछा इसमें माया का जाल है कि निकलना जिसमे मुहाल है ॥
जो था कल यहां न वो आज है पल पल में नया ही समाज है ।
कोई बन रहा महाराज है कहीं जिन्दगी ही बबाल है ॥
यह मेरा है इसका मैं हूं धनी मेरा मालोज़र है मै हूं ग़नी ।
गई पल मैं बिगड जो थी बनी रहा बाकी सिर्फ़ मलाल है ॥
कहां मान्धाता दिलीप हैं कहां विक्रमादि महीप हैं ।
नहीं ओस बूंद का सीप मैं है करार ऐसी मिसाल है ॥
दरिया है तन और सीप मन मोती है सच्चिदानंद घन ।
बिना गुरू कृपा यह अमोलधन कोई पावै किसकी मजाल है ॥
गईशै नमक की जो खान मैं हुई वो नमक किसी आन मैं ।
यूंही ब्रह्म रूप के ध्यान मैं जो हो लीन फिर न ज़वाल हैं ॥
जिसे मुक्ति पाने की चाह हो मथुरेश गुरु की पनाह लो ।
कहि गीताजी मैं जो राह चलके यह जीव होता निहाल है ॥

(८) ॥ ग़ज़ल ॥

उठ चेत कर मुसाफ़िर कबसे तू सोरहा है ॥
दम दम अमोल पूंजी ग़फ़लत में खो रहा है ॥ १ ॥

जिस देश को है जाना पाया न कुछ ठिकाना ॥
माया मैं मन लुभाना दीवाना हो रहा है ॥ २ ॥
दौलत है सारी फ़ानी कल होनी है बिरानी ॥
तेरे न साथ जानी क्यों तन छिजो रहा है ॥ ३ ॥
पितु भ्रात पुत्र नाती तेरे नहीं संघाती ॥
है मौत सबकौ खाती नाहक़ तू रो रहा है ॥ ४ ॥
जीव आत्मा अमर है कुछ मौत का न डर है ॥
गिने नाश इसका जो नर दुख बीज बो रहा है ॥ ५ ॥
मथुरेश की दया से दुख मूल जगत नासे ॥
सब कृष्ण रूप भासे निश्चै यह हो रहा है ॥ ६ ॥

(६) ॥ ग़ज़ल ॥

जिसने निज रूप को जाना नहीं हैरान हुवा ॥
भूलकर अपने कौ इन्सान से हैवान हुवा ॥ १ ॥
पांच तत्वों का जो यह जिस्म है मन बुद्धि समेत ॥
उसकौ निज रूप समझ ख्वारो परेशान हुवा ॥ २ ॥
आत्मा सत्त चिदानंद अजर अबिनाशी ॥
दानां और बीना भी फँस माया मैं नादान हुवा ॥ ३ ॥
देह ज्यों बाल तरुण वृद्ध जुदी आवे नज़र ॥
मुखतलिफ जिस्मो मैं त्यों जीवका गुजरान हुवा ॥ ४ ॥

पहन ते कपडे नये जैसे पुराने तज कर ॥
जीवको जिस्म बदलने में यूं मैलान हुवा ॥ ५ ॥
सर्दी और गर्मी व दुख सुख को अनित जान सहे ॥
उनसे व्याकुल जो न हो उसकाही कल्यान हुवा ॥ ६ ॥
देह मन बुद्धि करैं कर्म गुणों के अनुसार ॥
उसको निज करनी समझ मुफ्त मैं बन्धान हुवा ॥ ७ ॥
कर्म तन मन जो करैं देख तू बनकर सालिस ॥
फल की तज चाह यही मुक्ति का सामान हुवा ॥ ८ ॥
नेको बद कर्मों का फल कीजै श्रीकृष्ण अर्पण ॥
दरज गीता मैं यह मथुरेश का फ़रमान हुवा ॥ ९ ॥

(१०) भजन रेलगाडी का (लावनी)

चेतौ चेतौ जल्द मुसाफिर गाड़ी जाने वाली है ।
लाइन किलियर लेनेको तैयार गार्ड बनमाली है ॥ चे० ॥
पांच धातु की रेलहै जिसको मन अंजन लेजाता है ।
इन्द्री गण के पैह्यों से वो खूबहि तेज चलाता है ॥
मील हज़ारों चलने पर भी थकने कभी न पाता है ।
कठिन बज्र लोहेका अद्भुत चंचलता दिखलाता है ॥
बडे गार्ड बन्माली के कर मैं उसकी रखवाली है ।
चेतौ २ जल्द० ॥ १ ॥

जाग्रत सुपन सुषुप्ती येही तीन सुख्य इस्टेशन हैं ।
आठ पहर इनही मैं विचरै रेल सहित यह अंजन है ॥
कर्म, उपासन, ज्ञान, टिकट घर लेता टिकट पथिकजन हैं ।
फर्स्ट सेकिन अरु थर्ड क्लास ले जितना पल्ले शुभधन है ॥
बैठ न पावै हरगिज़ वो नर जो इस ज़रसे खाली है ।
चेतौ २ जल्द० ॥ २ ॥

पथिकों के ललचाने कौ यह नाना रूपों सजती है ।
तीन घंटियां बाल तरुण अरु जरा की इसमैं बजती हैं ॥
तीजी घंटी होने पर झट जगह को अपने तजती है ।
आते जाते सीटी देकर रोती और गरजती है ॥
धर्म सनातन लाइन छोड़े निपट बिगड़ने वाली है ।
चेतौ २ जल्द० ॥ ३ ॥

पाप पुन्य के भारका बंडल कसकर साथहि रखते हैं ।
काम क्रोध लोभादिक डाकू खड़े राह मैं तकते हैं ॥
इस्टेशन इस्टेशन पर रागादिक रिपू भटकते हैं ।
पुलिस मैन सतगुरु उपदेशक रक्षा सबकी करते हैं ॥
निर्भय वो जाता जिसने कृपा मथुरेश की पाली है ।
चेतौ चेतौ जल्द मुसाफ़िर गाढ़ी जाने वाली है ॥ ४ ॥

(११) ध्रुपद उपदेशात्मक ॥

श्रीहरि आनन्द कन्द काटैंगे भव के फंद ।
छांड़ छल छंद प्राणि उनहिकौ तू ध्यारे ॥
जग मैं ना कोई तेरो वृथा करै मेरो मेरो ।
रैनको बसेरो यामैं चित्त मत लगारे ॥
सदाही जो संग रहैं हितहीकी बात कहैं ।
विपती मैं बांह गहैं वाकी शरण जारे ॥
मथुरापति सांचो है मित्र हम जान्यो भाई ।
राच्यो जो वामैं सोजन सदा मगन प्यारे ॥

(१२) निर्गुण उपदेश का पद—

राग विहाग वा आसावरी ॥

हृदय बिच रमरह्यो पीव हमारो ॥
जोग जतन को रोग नपालूं अकमैं पायो प्यारो ॥हृदय०॥
(अ०) जाके काज सब सुख कौ त्यागत कर्ण मुद्रिका धारौ ॥
अलख निरंजन सोई दुख भंजन घटहिमें प्रघट निहारो ।१॥
„ अनहद नाद बांसुरी धुन से मनहि रिझावन हारो ॥
डार डार अरु पात पात सोई भासत बंसीवारो ।२॥
„ मन दर्पण जब शुद्ध कियो दृग प्रेम को अंजन डारो ॥

शील छमा के पहिरे आभूषण कपट को घूंघट टारो ॥३॥
„ मन वृन्दावन वृत्ति गोपिका चेतन मोहन प्यारो ॥
रास रंग रस चाखत विरले सन्तन सार निहारो ॥४॥
„ देह गेह सुख में मन गड्यो इश्क में तन नहिं जारो ॥
मधुरा कहै पिया के दर्शन कठिन येही निर्धारो ॥५॥

(१३) सतसंग की महिमा का पद—

विहाग वा सोरठ में गाना ॥

जगत में रतन धन्य सतसंग ॥
अ०—कुमति विनासै सुमति प्रकासै भासे निज प्रिय अंग ॥
तीन ताप कौ तुरत निवारै तारै ज्यों श्रीगंग ॥ ज ॥१॥
„ काम क्रोध मद लोभ मोह रिपु नासत सकल कुसंग ॥
सत संगत प्रतापतैं होवै जन्म-मरण दुख भंग ॥ ज० ॥२॥
„ उदय होत हिये शान्त सरस रस परमानंद तरंग ॥
हरि के दरस परस की मन मैं भारी उठै उमंग ॥ ज० ॥३॥
„ भजनानन्द गरुड़ लख भाजै बिषयानन्द भुजंग ॥
अंकुश ज्ञान विराग भक्तितैं वश है मन मातंग ॥ ज० ॥४॥
„ अलख अगोचर वेद बखान्यो ब्रह्म स्वरूप असंग ॥
सो मथुरेशसुसंगप्रभावतैं मिलैसुभगरुचिअंग ॥ ज० ॥५॥

॥ पद वैराग्य ॥

(अनेक रागिनी में गाया जासकता है)

मान मन क्यों अभिमान करै ॥
जोवन धन छन भंगुर तनै काहे मूढ़ मरै ॥
अ०—जल बिच फेन बुद बुदा जैसे छिन छिन बन बिगरै ॥
त्यों यह देह खेह होय छिन मैं बहुर न दीख परै ॥ मा० ॥१॥
,, मंदिर महल बहल रथ वाहन यहिं रहिजात धरै ॥
भाई बंधु कोई संग न लागै ना कोई साख भरै ॥ मा० ॥२॥
,, चाम के देहन नेह लगावै उन बिन नाहि सरै ॥
धिक तोकौंरे अतिहीसुन्दर हरिकी सुधना करै ॥ मा० ॥३॥
,, हरि चर्चा सतसेवा अर्चा इनतैं निपट डरै ॥
कूकर सूकर तुल्य भोग रत अधहोय विचरै ॥ मा० ॥४॥
,, प्रेम रंग मैं डूबै जबही नैनन नीर झरै ॥
मथुरा कहै तुरत हरि भेटैं सबविधि पीर हरैं ॥ मा० ॥५॥

(१५) ॥ पद ॥

मन कों बिसराम कठिन हरिके बिन ध्याये ॥
और जतन सन्तन सब न्यूनहीं बताये ॥ मनकों० ॥
योगी जन ल्यो समाध तपसी तप लेहुसाध ॥

चित्त व्याध मिटत नाहिं भस्म के रमाये ॥ मनकों० ॥
क्षेम कुशल चाहत नर, नेम करत दुखके डर ॥
राधावर प्रेम बिना सुखहि कौन पाये ॥ मनकों० ॥
बिधनाकी भटकन सब मिटगइ लख वाकी छब ॥
बांकी हरि झांकी करि मुनिन दुख मिटाये ॥ मनकों० ॥
राखहु मथुरेश लाज प्रघटे तुम भक्त काज ॥
देहु दरस ब्रजराज याचूं सिरनाये ॥ मनकों० ॥

(१६) नाटक की चीज़ गुजराती लय ॥

सुन नरतन धारी ? किसने तिहारी मति मारी ॥ रेसुन० ॥
गही दुनिया दारी, हरकी बिसारी सुध सारी ॥
दोहा—छिन भंगुर काया तेरी, मायाका इक खेल ॥
विषयभोग भायातुझे, किया न हरिसे मेल ॥
रे, है कौतुक भारी गति ना सुधारी तैं अनारी ।, रे सुन० ॥१॥
दोहा—रैन दिवस मन बसरहा, देह गेहका नेह ॥
हा तू नाहक फँस रहा, होना है सब खेह ॥
रे, है बारी बारी पूंजी ये सारी जान हारी ॥ रे सुन० ॥२॥
दोहा—पिता पितामह कितगये, कित रावणसे बीर ॥
रीते कर बीते सभी, मन जीतै सो मीर ॥
रे, मति न्यारी न्यारी जिसने बिचारी पाई ख्वारी । रे सुन० ॥३॥

दोहा—हरिभज सब तज बावरे, मिटि हैं सारे क्लेश ॥
प्रीतकिये पीतममिलै, सुखदायक मथुरेश ॥
रे, छबि प्यारी प्यारी जिसने निहारी सो सुखारी ॥ रे सुन० ॥ ४ ॥

(१७) ॥ कवित्त ॥

योगिन सुयोग साध मेटी मन आध व्याध कर्मी जन यज्ञ स्वाद चाख सुख लीनो है । पुरुष प्रकृति ज्ञान पाय कोऊ सावधान आत्म विज्ञान मांहि कोऊ चित्त दीनो है ॥ न्याय वैशेषिक मत काहू के है अभिमत मैं तौ कछु स्वारथ को लाभ नाहि कीनो है । मथुरा लजात येतो कही हू न जात बात एक ग्वारिया बलात मेरो मन छीनो है ॥ १ ॥

(१८) ॥ सवैया ॥

श्रीनंदनन्दन आनदकन्द सुनौ बिनती जगदीश हमारी ।
दीनके नाथ अधीनके साथ नवीन नहीं बखशीश तिहारी ॥
लाखन के अपराध छमे प्रण राखन को जगमैं अघहारी ।
पाप विशेष मेरे मथुरेश निहार के क्यों निज टेक बिसारी ॥१॥

इस के उपरान्त

श्रीमथुरेश भजन माला

" विनय सुधाकर

" प्रेम प्रभाकर

" वर्ष महोत्सव सार संग्रह

आदि और भी उत्तमोत्तम गायन पुस्तकें छपकर प्रसिद्ध और संम्पालित होचुकी हैं वोः और यह पुस्तक जयपुर के बुकसेलर गुलाबचंद की दुकान से मिल सकती हैं ॥

पता

सांगानेर चौपड बाजार देसी डाकघर के सामने राज सवाई जयपुर (राजपुताना)